Bachelor of Commerce

Semester – II

Paper Code –

BUSINESS ECONOMICS – II

व्यावसायिक अर्थशास्त्र – II

विषय सूची

अध्याय 1 बाजार संरचना 1–35

अध्याय 2 एकाधिकारी प्रतियोगिता 36–55

अध्याय 3 कीमतों के साधन–I 56–83

अध्याय 4 कीमतों के साधन–II 84–101

☆☆☆

B.Com (DDE) Second Semester
Business Economics-II
PAPER CODE:

Theory Paper Max Marks: 80
Time: 3 Hrs **Internal marks: 20**

Note: - The Examiner shall set nine questions in all covering the whole syllabus. Question No.1 will be compulsory covering all the units and shall carry 8 small questions of 2 marks each. The rest of the eight questions will be set from all the four units. The examiner will set two questions from each unit out of which the candidate shall attempt four questions selecting one question from each unit. All the questions shall carry 16 marks each.

Unit-I

Market Structures: Market Structures and business decisions; Objectives of a business firm. **Perfect Competition:** Profit maximization and equilibrium of firm and industry; Short-run and long run supply curves; Price and output determination; Practical applications. **Monopoly:** Determination of price under monopoly; Equilibrium of a firm; Comparison between perfect competition and monopoly; Multi-plant monopoly; Price discrimination. Practical applications.

Unit-II

Monopolistic Competition: Meaning and characteristics; Price and output determination under monopolistic competition; Product differentiations; Selling costs; Comparison with perfect competition; Excess capacity under monopolistic competition. **Oligopoly:** Characteristics, indeterminate pricing and output; Classical models of oligopoly; Price leadership; Collusive oligopoly; kinked demand curve.

Unit-III

Factor Pricing-I: Marginal productivity theory and demand for factors; Nature of supply of factor inputs; Determination of wage rates under perfect competition and monopoly; Exploitation of labor; Rent-concept; Ricardian and modern theories of rent; Quasi rent.

Unit- IV

Factor Pricing-II: Interests-concept and theories of interest; Profit-nature, concepts, and theories of profit.

Suggested Readings:

1. Dr. Raj Kumar, Prof. Kuldeep Gupta, Business Economics, UDH Publishing and Distributors P(Ltd.), New Delhi.
2. R.K Lekhi, Business Economics, Kalyani Publishers.
3. V.G.Mankar, Business Economics, Himalaya Publishing House.
4. H.L.Ahuja, Business Economics, S. Chand and Company Ltd.

इकाई – 1

बाजार संरचनाएंः बाजार संरचनाएं और व्यापार निर्णयय एक व्यावसायिक फर्म के उद्देश्य। परफेक्ट कॉम्पीटिशनः फर्म और उद्योग का अधिकतम लाभ और संतुलनय शॉर्ट–रन और लंबे समय तक आपूर्ति घटता है, कीमत और आउटपुट निर्धारणय व्यावहारिक अनुप्रयोग। एकाधिकारः एकाधिकार के तहत मूल्य का निर्धारणय एक फर्म का संतुलनय सही प्रतिस्पर्धा के एकाधिकार के बीच तुलनाय बहु–संयंत्र एकाधिकारय मूल्य भेदभाव। व्यवहारिक अनुप्रयोग।

इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र

1. बाजार संरचनाओं की अवधारणा को समझेगें
2. विभिन्न प्रकार की बाजार संरचनाओं से परिचित होगें
3. समझेगें कि पूर्ण और एकाधिकार बाजार प्रतियोगिता के तहत कैसे संतुलन का फैसला किया जाता है।

Unit–I

बाजार संरचना
(MARKET STRUCTURES)

बाजार क्या है? (What is Market)

अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का प्रयोग, आम बोलचाल की भाषा की तुलना में, विशेष अर्थों में किया जाता है। आम बोलचाल की भाषा में, बाजार शब्द का प्रयोग किसी उस विशेष स्थान के लिए किया जाता है, जहाँ किसी वस्तु के क्रेता वह विक्रेता आपस में मिलते हैं तथा वस्त का क्रय–विक्रय करते हैं, अर्थशास्त्र में बाजार शब्द से अभिप्राय किसी विशेष स्थान से नहीं बल्कि एक ऐसे क्षेत्र से है जहाँ किसी वस्तु की सारे बाजार में एक ही कीमत प्रचलित होने की प्रवत्ति पाई जाती है। क्रेता तथा विक्रेता को आपस में सम्पर्क करने के लिए स्वयं मिलना आवश्यक नहीं। वे टेलीफोन, तार पत्र व ऐजेण्ट द्वारा भी सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

बाजार संरचना के प्रमुख प्रकार (Main Forms of Market Structure)

प्रतियोगिता के आधार पर बाजार को निम्नलिखत भागों में बाँटा जा सकता है: (1) पूर्ण प्रतियोगी, (2) एकाधिकारी, (3) अपूर्ण प्रतियोगी, (4) द्वैधिकार, (5) अल्पाधिकार।

बाजार संगठन के विभिन्न प्रकार नीचे बने चित्र में दिए गए है: चित्र 5.1

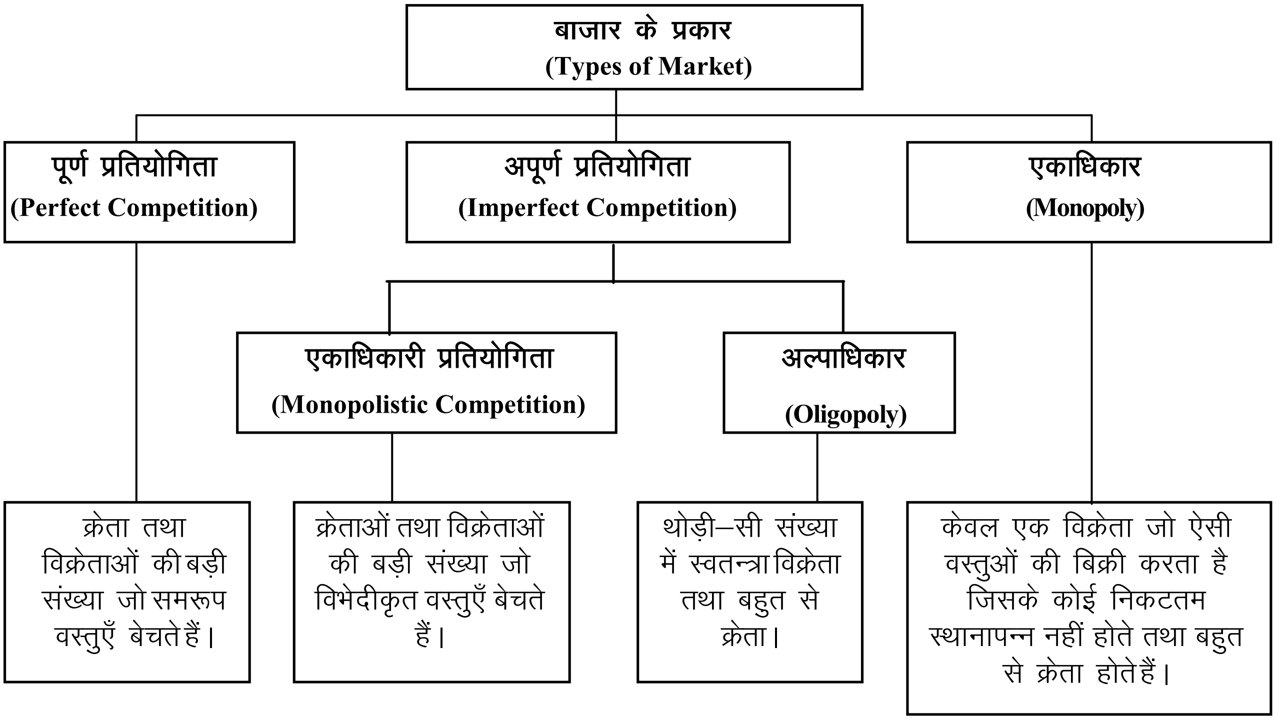

चित्र 5.1

कुछ आधारभूत व्यावसायिक निर्णय (Some Basic Business Decisions)

विभिन्न बाजार संरचनाओं में एक व्यापारी को अनेक प्रकार के व्यावसायिक निर्णय लेने पड़ते हैं। विभिन्न व्यावसायिक निर्णय निम्नलिखित है :

(1) किन वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किया जाए?

(2) उत्पादन तथा साधन तकनीक क्या अपनाई जाए?

(3) कितना उत्पादन किया जाना चाहिए और किस कीमत पर बेचा जाना चाहिए? (4) साज–सज्जा (Equipment) को कब बदला जाना चाहिए।

(5) नए प्लांटों का आकार तथा तिथि–स्थान क्या होना चाहिए?

(6) उपलब्ध पूँजी का बँटवारा कैसे किया जाना चाहिए?

(7) लागत को कैसे पूँजी का बंटवारा कैसा किया जाना चाहिए?

(8) बिक्री को अधिकतम करने के लिए क्या रणनीति अपनाई जानी चाहिए।

(9) लागत नियन्त्रण, कीमत नियन्त्रण, कोटि नियन्त्रण (Quality Control), माल सूची नियन्त्रण आदि के लिए क्या रणनीति होनी चाहिए?

(10) बाजार में माँग की प्रकृति तथा मात्रा के निर्धारण के लिए एवं बाजार सर्वेक्षण के लिए क्या रणनीति होनी चाहिए?

(11) सरकार के साथ सम्बन्ध कैसे स्थापित किए जाएँ?

(12) व्यवसाय को चलाने के लिए तथा विभिन्न आर्थिक निर्णय लेने के लिए दक्ष परामर्श (Expert Advice) कैसे ली जानी चाहिए?

भूमिका (Introduction)

व्यावसायिक फर्म से अभिप्राय उस इकाई से है जो वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन करती है। फर्म के अन्तर्गत उन सभी उद्यमों को शामिल किया जाता है जो वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन करते हैं। फर्म एक एकल स्वामित्त्व संगठन, सांझेदारी या निगम हो सकती है। एक व्यावसायिक फर्म के उद्देश्य से सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद पाया जाता है।

परम्परागत अर्थशास्त्रियों के अनुसार फर्म का उद्देश्य केवल अपने लाभ को अधिकतम करना है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार संयुक्त पूँजी कम्पनियों के वर्तमान युग में जहाँ शेयर धारक (Shareholder) तथा मैनेजर के हितों तथा कार्यों का स्पष्ट विभाजन हो गया है। फर्म के कई वैकल्पिक उद्देश्य (Alternative goals or objectives) हो सकते हैं। फर्म के मुख्य वैकल्पिक उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं:

(1) लाभ अधिकतम करना (Profit Maximisation)

(2) आय या बिक्री अधिकतम करना (Revenue or Sales Maximisation)

(3) सन्तुष्टि का अधिकतम करना (Satisfaction Maximisation)

(4) सुरक्षित लाभ (Security Profits)

(5) विकास को अधिकतम करना (Growth Maximisation)

(6) मैनेजर की उपयोगिता को अधिकतम करना (Utility Maximisation or Managerial Discretion)

(7) सन्तोषप्रद सिद्धान्त (Satisficing Theory)

(8) सिरट और मार्च का व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त (Cyrt and March's Behavioural Theory)

लाभ अधिकतम करना (Profit Maximistion)

परम्परागत अर्थशास्त्रियों (Traditional Economists) के अनुसार एक फर्म का मुख्य उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है। लाभ का अनुमान कुल आय में से कुल लागत को घटा कर लगाया जा सकता है। (T=TP–TC)। यह एक आधिक्य है जो उद्यमी को उत्पादन के सभी साधनों को उनकी सेवाओं का भुगतान करने के बाद बचती है। इसमें उद्यमी की अपनी सेवाओं के लिए किए जाने वाले भुगतान अर्थात् सामान्य लाभ को भी शामिल कर लिया जाता है। अतएव् एक फर्म को सामान्य लाभ से अधिक जो आय प्राप्त होती है वह अति–सामान्य लाभ (Supernormal Profit) है। फर्म का लक्ष्य इसी अतिसामान्य लाभ (Supernormal Profit) को अधिकतम करना है।

1. लाभ अधिकतम करने की दशायें (Conditions of Profit Maximisation)

एक फर्म के लाभ का अनुपात के एक निश्चित स्तर की बिक्री से प्राप्त कुल आय (TR) तथा उसकी कुल उत्पादन (TC) के अन्तर द्वारा लगाया जाता है। अर्थात्

$$\pi = TR\text{-}TC$$

(यहाँ π=लाभय TR=कुल आयय TC=कुल लागत।)

एक फर्म को अपने लाभ अधिकतम करने के लिए किसी वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करना चाहिए जिस पर निम्नलिखित दो शर्ते पूरी होती हैं।

(1) सीमान्त आय (MR) = सीमान्त लागत (MC)

(2) सीमान्त आय वक्र का ढलान सीमान्त लागत वक्र के ढलान से कम है अर्थात् सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटती हो।

निकलसन के शब्दों में, ''आर्थिक लाभ अधिकतम करने के लिए एक फर्म उस मात्रा का उत्पादन करती है जिस पर सीमान्त आय (MR) सीमान्त लागत (MC) बराबर होती है अर्थात् MR=MC तथा सीमान्त लाभ कम हो रहे होते हैं।''

(In order to maximise profit a firm should choose the output for which marginal revenue is equal to marginal cost and marginal profit must be decreasing of the optimal level of output. - Nicholson)

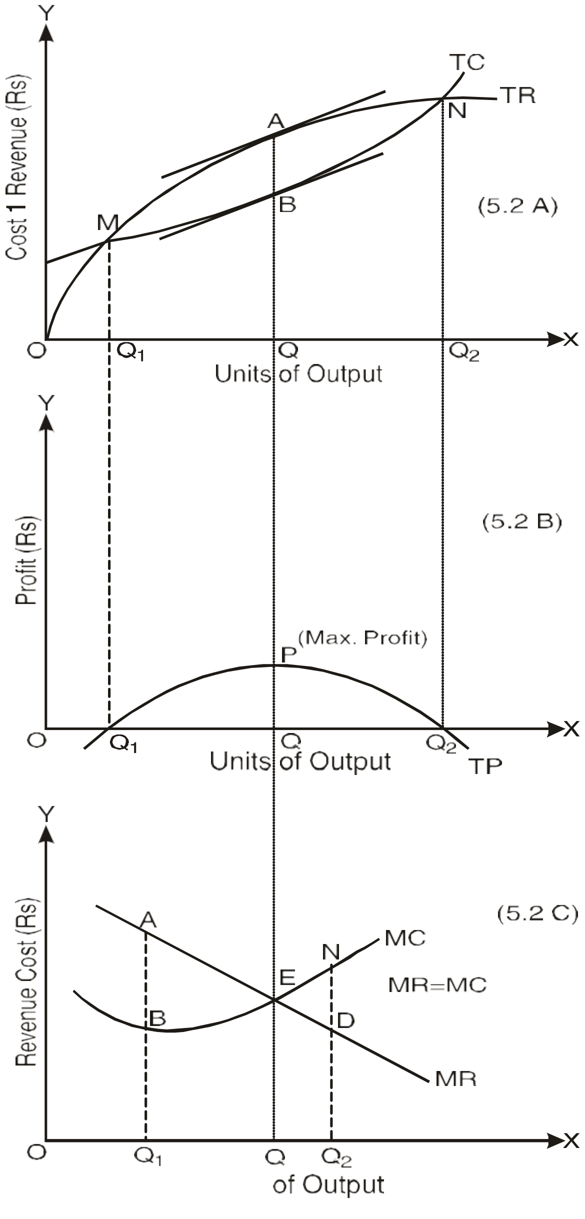

एक फर्म के अधिकतम लाभ को रेखाचित्र 1 (A) (B) तथा 100 (C) द्वारा प्रकट किया जा सकता है। चित्र 1 (A) तथा 1 (C) में OY अक्ष पर आय तथा लागत को प्रकट किया गया है। 1 (B) में OY अक्ष पर कुल लाभ प्रकट किए गए हैं। OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा को प्रकट किया गया है। 14.1 चित्र 1 (A) में TC कुल लागत वक्र तथा TRI कुल आय वक्र है। कुल आय वक्र तथा कुल लागत वक्र का अन्तर उत्पादन के उस स्तर पर अधिकतम होगा जिस पर इन दोनों वक्रों का ढलान बराबर होगा। इनका ढलान ज्ञात करने के लिए इन पर दो सामान्तर स्पर्शीय रेखाएँ (Tangents) खींची गई हैं। इनका ढलान बिन्दु A तथा B पर इन दोनों वक्रों का अधिकतम अन्तर ज्ञात करने के लिए इन पर, दो स्पीय रेखाएँ (Tangents) खींची गई हैं। जिन बिन्दुओं पर स्पर्शीय रेखाएँ समानान्तर होती हैं जिस पर उनका ढलान बराबर होता है। उनका अन्तर अधिकतम होता है। इस रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि बिन्दु A तथा बिन्दु B पर स्पीय रेखाओं का ढलान बराबर है इसलिए AB अधिकतम अन्तर होगा जो अधिकतम लाभ को प्रकट कर रहा है। यह ध्यान रखना चाहिए।

जहाँ स्पर्शीय रेखाएँ इन्हें छू रही हैं बराबर हैं। अतएव OQ उत्पादन की मात्रा पर कुल आय वक्र तथा कुल लागत वक्र का अन्तर AB अधिकतम है अर्थात् फर्म को अधिकतम लाभ AB प्राप्त हो रहे हैं। इसके विपरीत उत्पादन की OQ_1 मात्रा तथा OQ_2 मात्रा पर कुल आय तथा कुल लागत बराबर है। अतएव् फर्म को कोई लाभ प्राप्त नहीं होंगे।

(2) रेखाचित्र 1 (B) में कुल लाभ वक्र को प्रकट किया गया है। इस वक्र द्वारा ज्ञात होता है कि उत्पादन की व्फ मात्रा पर TP वक्र अपने उच्चतम बिन्दु E पर होगी, अर्थात् OQ मात्रा पर फर्म को Units of Output अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहे हैं।

(3) चित्र 3 (C) से ज्ञात होता है कि वस्तु की व्फ मात्रा पर सीमान्त आगम वक्र तथा सीमान्त लागत वक्र एक दूसरे को बिन्दु E पर काट रहे हैं अर्थात् वस्तु की व्फमात्रा पर सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत (MR=MC) बराबर है। इसीलिए OX मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगी। उत्पादन की फमात्रा से कम किसी भी अन्य मात्रा व्फ, की सीमान्त आय AQ सीमान्त लागत BQ_1 से अधिक है (MR>MC)। इससे प्रकट होता है कि फर्म OQ_1 मात्रा से जितना उत्पादन अधिक करती जाएगी उसके लाभ बढ़ते जाएँगे। इसके विपरीत उत्पादन की व्फ मात्रा से अधिक किसी भी अन्य मात्रा जैसे OQ, की सीमान्त लागत छफ, सीमान्त आय क्फ, से अधिक (MC>MR) है। इससे प्रकट होता है कि फर्म OQ मात्रा से अधिक उत्पादन व्फ, करने पर फर्म को ब्व की हानि उठानी पड़ेगी। इसलिए फर्म OQ मात्रा के उत्पादन द्वारा ही अधिकतम लाभ प्राप्त करेगी।

संक्षेप में, परम्परावादी सिद्धान्त के अनुसार फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए वस्तु की व्फ मात्रा का उत्पादन करेगी। इसकी कुल लागत ठफ होगी तथा कुल आय AQ होगी। इस प्रकार फर्म को AB=(QP) अधिकतम लाभ प्राप्त होगी। अधिकतम लाभ की स्थिति में सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत बराबर होंगे तथा सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटेगी।

लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य के पक्ष में तर्क

(Arguments in favour of Profit Maximisation Goal)

लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं:

(1) सबसे मजबूत प्रयोजन (Strongest Motive) : एक फर्म के व्यवहार का सबसे मजबूत दृढ़ (Persistent) तथा सार्वभौमिक (Universal) प्रयोजन लाभ प्राप्त होता है। यह ठीक है फर्म अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भी उत्पादन कर सकती है परन्तु फर्म के व्यवहार पर उन वैकल्पिक लक्ष्यों का एक तो प्रभाव बहुत कम पड़ता है। दूसरे

उनका अध्ययन फर्म के अध्ययन को अधिक जटिल बना देगा। इसलिए यह उचित है कि फर्म का लक्ष्य अधिकतम लाभ करना हो।

(2) फर्म के अस्तित्त्व के लिए आवश्यक (Essential for the Survival of the firm) : प्रतियोगिता के वातावरण में फर्मों को जीवित रहने के लिए यह आवश्यक है कि वे अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करें। फर्मों को यह पता होता है कि केवल वे ही फर्म दूसरों की प्रतियोगिता में जीवित रह सकती है जो मजबूत होती है अर्थात् जिनके लाभ अधिक (Survival of the Fillest) होने हैं। अतएव् फर्मों को अपना उत्पादन जारी रखने के लिए अधिकतम लाभ को प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

(3) सही भविष्यकथन (Accurate Prediction) : फ्रीडमेन के अनुसार, किसी सिद्धान्त की जाँच उसकी मान्यताओं पर आधारित भविष्यकथनों की सत्यता पर निर्भर करती है। लाभ अधिकतम करने के लिये आधार पर फर्म के उत्पादन सम्बन्धी जो भविष्यकथन किए गए हैं वे सामान्यतया सही साबित हुए हैं। इसलिए लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य को सन्तोषजनक माना जाना चाहिए।

(4) तथ्यों पर आधारित (Empirical) : लाभ अधिक करने का लक्ष्य तथ्यों पर आधारित लक्ष्य है। कई अर्थशास्त्रियों जैसे मैकलप (Machlup) रीडर (Reader) आदि ने कई फर्मों का अध्ययन करके यह सिद्ध किया है कि क उद्यमी उत्पादन की मात्रा निर्धारित करते समय सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत को बराबर करने का प्रयत्न करता है अर्थात् अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

(5) फर्मों के समूह व्यवहार की उचित व्याख्या (Proper Explanation of the behaviour of groups of firms) : लाभ अधिकतम करने की मान्यता फर्मों के समूहों के व्यवहार की सामान्य जानकारी प्राप्त करने तथा उसकी व्याख्या करने की एक लाभदायक विधि है। व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त (डपबतवमबवदवउपब जीमवतल) केवल किसी विशेष फर्म के व्यवहार का अध्ययन नहीं है बल्कि यह बाजार की शक्तियों में होने वाले परिवर्तनों के कीमतों तथा उत्पादन की मात्राओं पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या तथा उनसे सम्बन्धित भविष्यकथन का अध्ययन है। इसके लिए लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य की विशेष उपयोगिता है।

थाम्पसन तथा फार्मबी के अनुसार, "लाभ अधिकतम करने का लक्ष्य निम्नलिखित स्थितियों के लिए विशेष रूप से सुविधाजनक है (1) फर्मों की संख्या काफी अधिक है तथा व्यक्तिगत फर्म के लिए कोई भविष्यकथन नहीं किया जाना है। (2) प्रतियोगिता काफी अधिक है। (3) स्थितियों में होने वाले विशेष परिवर्तनों के कीमतों, उत्पादों, आगतों (Input) पर पड़ने वाले सामान्य प्रभावों की व्याख्या की जानी हो।"

(The goal of profit maximisation in suitable in those situations where (1) Large number of firms are involved and nothing has to be predicted about the behaviour of individual firms; (2) Competitive forces are relatively intense; (3) the general effects of a specified change in condition upon prices, outputs and resource inputs are to be explained and predicted. — Thompson and Formbay).

लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य के विपक्ष में तर्क या आलोचना

(Arguments against Profit Maximisation or Criticisms)

कई अर्थशास्त्रियों जेसे एन्थोनी (Anthony) चौम्बरलिन (Chamberlain) तथा गैलब्रेथ (Galbraith) आदि ने लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए हैं या निम्नलिखित आलोचनायें की हैं :

(1) अनिश्चितता (Uncertainty) : आलोचकों के अनुसार फर्मे अनिश्चितता के कारण लाभ को अधिकतम नहीं कर पातीं। अनिश्चितता का मुख्य कारण फर्मों को बाजार की पूरी जानकारी नहीं होना है। फर्मों के लिए उत्पादन सम्बन्धी कई विकल्प होते हैं। परन्तु अपूर्ण जानकारी तथा अनिश्चितता के कारण उनके लिए यह तय

करना कठिन होता है कि कौन से विकल्प से अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकता है। इसलिए अधिकतम लाभ के लक्ष्य की कोई वास्तविकता नहीं रह जाती।

(2) संयुक्त पूँजी कम्पनियों का लक्ष्य अलग हो सकता है (The goal of joint Stock companies may be different) : संयुक्त पूँजी कम्पनियों में शेयर धारकों (Share holders) तथा मैंनेजरों के हित अलग–अलग हो सकते हैं। मैंनेजरों का लक्ष्य लाभ अधिकतम करने के स्थान पर बिक्री अधीकतम करना या उत्पादन को अधिकतम करना हो सकता है। संयुक्त पूँजी कम्पनियों का वास्तविक संचालन मैनेजरों द्वारा किया जाता है। शेयर धारकों को अपने निवेश पर सन्तोषजनक लाभ मिलते रहे तो वे मैनेजरों के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करते। मैजेजरों का हित कम्पनी के विकास तथा अपनी बढ़ती हुई तनख्वाह में होता है। इसीलिए वे अधिकतम लाभ के स्थान पर अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं। थाम्पसन तथा फार्मबी के अनुसार, ''बड़े निगमों को प्रबन्ध तथा स्वामित्त्व के अलग–अलग होने के कारण मैनेजरों का इस बात का अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वे लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य के अतिरक्ति किसी अन्य लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए। (In the large corporation the separation of control from the ownership gives managers the discretion and pursue goals other than maximum profit)

(3) अवास्तविक मान्यताएँ (Unrealistic Assumption) : अधिकतम लाभ प्राप्त करने का लक्ष्य उस मान्यता पर आधारित है कि फर्मे सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय की गणना कर सकती है। वे वस्तु की मात्रा का उत्पादन करती हैं जिस पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय बराबर होती हैं। परन्तु वास्तव में फर्मे उत्पादन सम्बन्धी निर्णय लेते समय सीमान्त लागत (MC) तथा सीमान्त आय (MR) की गणना नहीं करती। हाल तथा हिच (Hall and Hitch) ने 32 महत्त्वपूर्ण उद्यमकर्ताओं का इन्टरव्यू करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि उन्हें सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय का कोई ज्ञान नहीं होता। इसलिए वे कभी भी अपने उत्पादन की सीमान्त लागत को सीमान्त आय के बारबर करने का प्रयत्न नहीं करते। हाकिन्स ने लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य की आलोचना करते हुए कहा है कि इस कथन का कि सभी फर्मों का लाभ अधिकतम करने के अतिरिक्त और कोई लक्ष्य नहीं है उसी प्रकार कोई तार्किक आधिक्य नहीं है जिस तरह इस कथन का कि सभी विद्यार्थियों को परीक्षा में अधिकतम अंक प्राप्त करने चाहिए चाहे वे उसके लिए सही या गलत तरीका अपनाएँ। (To argue thatall firms aim to do nothing else but maximise profits has own better basis in logic or intution than to argue that all students aim only and maximise examination makes by foul or fair means-Hawkins)

(4) अव्यावहारिक (Impractical) : आलोचकों के अनुसार प्रत्येक फर्म को व्यावहारिक रूप से कई कार्य करने पड़ते हैं जिनके फलस्वरूप लाभ अधिकतम करने का लक्ष्य अव्यावहारिक हो जाता है। इस प्रकार के कार्यों में राजनैतिक दलों को चन्दा देना, मजदूरों से कम काम लेना, मालिकों का पूर्ण रूप से कुशल न होना, हिसाब–किताब (Account) की पूर्ण जानकारी न होना आदि शामिल होते हैं। इसके फलस्वरूप जैसा कि हिक्स ने कहा है फर्म लाभ अधिकतम करने के लिए पर्याप्त मेहनत करने के स्थान पर शान्तजीवन (Quiet Life) व्यतीत करना पसन्द करते हैं।

(5) अल्पाधिकार में सम्भव नहीं है (Not Possible in Oligopoly) : आधुनिक युग में अल्पाधिकार की प्रव ति बढ़ती जा रही है। इस प्रकार के बाजार में कुछ थोड़ी–सी फर्मे वस्तु का उत्पादन करती हैं। अल्पाधिकार में यह संभव है कि बढ़ी फर्म जो कीमत तय कर लेती है बाकी फर्मे उसी पर अपना उत्पादन बेचे अल्पाधिकार की स्थिति में फर्मों का लक्ष्य लाभ को अधिकतम करने के स्थान पर अपने को जीवित रखना होता है।

(6) माँग की जानकारी का अभाव (Lack of the Knowledge of Demand) : स्टोनियर तथा हेग के अनुसार फर्मों को सीमान्त लागत का ज्ञान तो हो सकता है परन्तु उन्हें सीमान्त आय (MR) का पूर्ण ज्ञान नहीं हो

पाता। इसका कारण यह है कि फर्मों के लिए माँग का पूर्ण रूप से सही अनुमान नहीं लगाना सम्भव नहीं होता। लागत के साथ–साथ माँग के अनुमान के बिना फर्मे अपने लाभ को अधिकतम नहीं कर सकतीं।

(7) उपयुक्त लक्ष्य नहीं है (NotaProper Goal) : फर्मों के लिए कई कारणों से लाभ अधिकतम करने का लक्ष्य उपयुक्त लक्ष्य नहीं होता। लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य के उपयुक्त नहीं होने के कारण हैं जैसे (1) उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश का डर, (2) मजदूर संगठनों द्वारा अधिक मजदूरी तथा बोनस की माँग करने का डर, (3) लाभ के सम्बन्ध में निरन्तर चिन्तित बना रहना आदि।

संक्षेप में, लाभ अधिकतम करने का लक्ष्य एक कठिन तथा अवास्तविक लक्ष्य है।

बिक्री अधिकतम करने का लक्ष्य

(Revenue Maximisation Goal)

प्रो. बामोल ने अपनी पुस्तक 'Business Behaviour] Value and Growth' में बिक्री अधिकतम करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। एक फर्म का मुख्य उद्देश्य बिक्री ँसम) को अधिकतम करना होता है। बिक्री से उनका अभिप्राय वस्तु को बेचने से प्राप्त कुल आय (Total Revenue) से है। इसलिए इस उद्देश्य को बिक्री अधिकतम लक्ष्य (Sale Maximisation Goal) भी कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, जब फर्मे लाभ के एक सर्वमान्य स्तर को प्राप्त कर लेती हैं तो उनका उद्देश्य लाभ को अधिकतम करने के स्थान पर बिक्री का अधिकतम करना हो जाता है। (One profits reach acceptable levels, the goal of the firms become maximisation of sales revenue and rather than maximisation of profits)

परिभाषा

(Dfinition)

बामोल के अनुसार, "बिक्री अधिकतम लक्ष्य के अनुसार फर्मों के मैनेजर लाभ के एक सन्तोषजनक स्तर को प्राप्त करने के बाद अपनी बिक्री को अधिकतम करने का प्रयत्न करते हैं।" (The Sales maximisation goal says that managers of firms seek and maximise their sales revenue subject to the constraint of earning a satisfactory profits- Baumoul) उपरोक्त परिभाषा से ज्ञात होता है कि जब फर्मों के लाभ इतने हो जाते हैं कि वे अपने हिस्सेदारों को सन्तुष्ट रख सके तो प्रबन्धकों का प्रयत्न लाभों को अधिकतम करने के स्थान पर बिक्री से आय को अधिकतम करना होता है। इस सिद्धान्त का अध्ययन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि फर्मे लाभ को एकदम भुला नहीं देती है। वे लाभ के एक सामान्य स्तर को अवश्य प्राप्त करना चाहती है परन्तु जब एक बार लाभ के सामान्य स्तर को प्राप्त कर लिया जाता है तो उनका लक्ष्य लाभ के स्थान पर बिक्री को अधिकतम करना हो जाता है।

बिक्री अधिकतम करने की शर्तें

(Condition of Revenue or Sales Maximisation)

एक फर्म अपने उत्पादन की बिक्री से प्राप्त कुछ आय (Total Revenue) को अधिकतम करने के लिए उस वस्तु का उस मात्रा में उत्पादन करती है जिस पर उसकी सीमान्त आय (Marginal Revenue) शून्य हो जाती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि फर्म उस मात्रा से जिस पर सीमान्त आय शून्य हो गई है अधिक उत्पादन करेगी तो उसकी कुल आय कम हो जाएगी। अधिकतम कुल आय के लक्ष्य की रेखाचित्र 2 की सहायता से व्याख्या की जा सकती है :

चित्र में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर आय लागत तथा लाभ को प्रकट किया गया है। PN वक्र सीमान्त आय (MR) वक्र है तथा PD वक्र औसत आय (AR) वक्र है। चित्र 2। में TR कुल वक्र, TC कुल लागत वक्र तथा TP कुल लाभ वक्र है। PP रेखा न्यूनतम लाभ को प्रकट कर रही है।

फर्म अपनी आय (Revenue) को अधिकतम करने के लिए OQ मात्रा का उत्पादन करेगी क्योंकि OQ मात्रा पर सीमान्त आय जैसा कि चित्र 3 (B) में बिन्दु N से ज्ञात हो रहा है शून्य है। परन्तु OQ मात्रा पर फर्म को न्यूनतम लाभ से कम लाभ मिलेंगे। यदि फर्म व्क मात्रा से अधिक उत्पादन करेगी तो सीमान्त आय ऋणात्मक हो – जाएगी तथा कुल आय कम हो जाएगी तथा चित्र 3 (A) से ज्ञात हो रहा है कि कुल आय AQ अधिकतम है।

(ii) चित्र 3A से यह ज्ञात हो रहा है कि यदि फर्म KQ_1 न्यूनतम लाभ प्राप्त करना चाहती है तो वह QQ_1 मात्रा का उत्पादन करेगी। फर्म को BQ_1 आय (Revenue) प्राप्त होती है जो अधिकतम आय से कम होगी। उत्पादन के इस स्तर पर फर्म को K_2Q_2 लाभ प्राप्त होंगे।

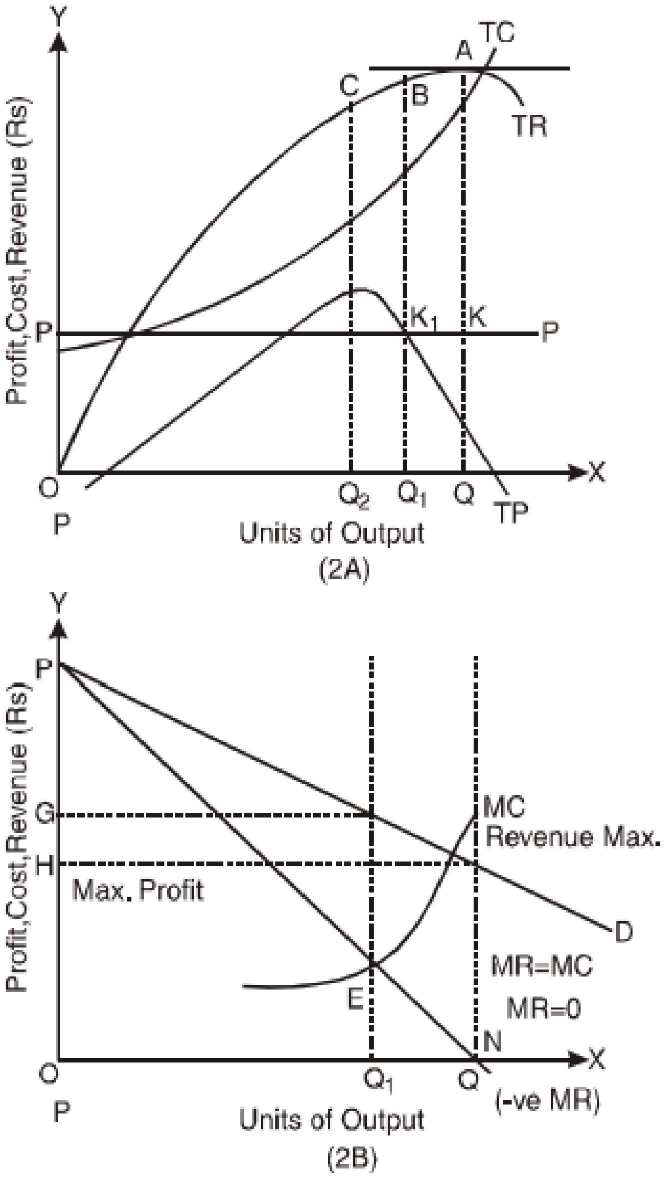

चित्र 5.3

(3) यदि फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम करना है तो वह OQ_2 मात्रा का उत्पादन करेगी जिस पर सीमान्त आय (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) बराबर होगी। अतएव् इस स्थिति में फर्म की कुल आय CQ_2 होती जो अधिकतम आय AQ से काफी कम होगी। अतएव् चित्र 2 से यह स्पष्ट हो जाता है कि आय अधिकतम करने वाली फर्म लाभ अधिकतम करने वाली फर्मों की तुलना में अधिक मात्रा का उत्पादन करेगी। परन्तु उसमें लाभ कम होंगे क्योंकि उसकी सीमान्त आय सीमान्त लागत (MC) से कम ($MR < MC$) है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि फर्म के कुल आय न्यूनतम लाभ की मात्रा पर निर्भर करेगी यदि न्यूनतम लाभ की मात्रा KQ है तो फर्म को अधिकतम आय प्राप्त हो सकेगी परन्तु यदि न्यूनतम लाभ K_1Q_1 है तो फर्म को अधिकतम से कुछ कम आय प्राप्त होगी।

बिक्री अधिकतम करने के लक्ष्य के पक्ष में तर्क

(Arguments in Favour of Maximisation of Sales Goal)

बिक्री अधिकतम करने के लक्ष्य के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं :

(1) अधिक वास्तविक (More Realistic) : बिक्री अधिकतम करने का लक्ष्य एक अधिक वास्तविक लक्ष्य है। वास्तव में फर्मे लाभ अधिकतम करने के स्थान पर बिक्री को अधिकतम करने को अधिक महत्त्व देती हैं। इसका कारण यह है सामान्यता एक फर्म की सफलता का अनुमान उसकी कुल बिक्री से लगाया जाता है। फर्गुसन तथा क्रोस के अनुसार, फर्म के उद्देश्यों के सम्बन्ध में "प्रतिपादित किये गए विभिन्न विकल्पों में से बामोल द्वारा प्रतिपादित विकल्प का एक बड़ा लाभ है—यह वास्तविक तथा विश्वसनीयता की दिशा में पुराने मॉडलों में सुधार करता है तथा साथ ही सामान्य सैद्धान्तिक विश्लेषण को सम्भव बनाता है।" (Among the various alternatives advanced Baumol's thesis has great advantage & it raises the other models in the direction of reality and plausibility while still permitting a rather general theoretical analysis — Ferguson and Cross)

(2) अधिक व्यावहारिक (More Practical) : बामोल द्वारा प्रतिपादित आय अधिकतम करने का सिद्धान्त अधिक व्यावहारिक है। इसका कारण यह है कि बिक्री अधिकतम करने के उद्देश्य के फलस्वरूप उत्पादन अधिक होता है तथा कीमत कम होती है। इसके फलस्वरूप उपभोक्ता के कल्याण में अधिक वृद्धि होती है। वे भी फर्मों के इस उद्देश्य का अधिक समर्थन करते हैं।

(3) अधिक ऋण प्राप्ति (More Avaliability of Loans) : वित्तीय संस्थायें किसी फर्म को ऋण देते समय मुख्य रूप से उसकी बिक्री को ध्यान में रखती हैं। जिस फर्म की बिक्री अधिक होती है उसे ऋण मिलने की सम्भावना होती है।

(4) बाजार में मजबूत स्थिति (Strong Position in the Market) : किसी फर्म की बिक्री का अधिकतम होना बाजार में उसकी मजबूत स्थिति का प्रतीक है। एक फर्म की बिक्री उस स्थिति में ही अधिक होती जब उपभोक्ता उस फर्म के उत्पादन को स्वीकार कर ले फर्म की प्रतियोगी शक्ति अधिक हो जाए तथा फर्म का विकास हो रहा हो। एक फर्म के लिए ये सभी स्थितियाँ उसकी प्रगति की प्रतीक हैं।

(5) प्रबन्धकों के लिए अधिक हितकारक (More Advantageous to the Managers) : एक फर्म की बिक्री का अधिकतम होना उसके मैनेजरों के अधिक हित में है। इसके फलस्वरूप बाजार में उनकी साख बढ़ती है। बिक्री का अधिकतम होना मैनेजरों की योग्यता का प्रतीक माना जाता है। इसका उनके वेतन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। वे फर्म के कर्मचारियों को भी अधिक वेतन देने की स्थिति में होते हैं। इसके फलस्वरूप उनके कर्मचारियों से अच्छे सम्बन्ध बने रहते हैं। इसलिए फर्म के मैनेजर इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि लाभ के एक सामान्य स्तर को प्राप्त करने के बाद वे फर्म की बिक्री को अधिकतम करे।

आलोचनाएँ (Criticisms)

बामोल के सिद्धान्त आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) लाभ सम्बन्धी बाधा (Profit Constraint) : बामोल का बिक्री अधिकतम करने का लक्ष्य लाभ की न्यूनतम मात्रा पर निर्भर करता है। परन्तु वास्तव में यह तय करना कठिन होता है कि लाभ की न्यूनतम मात्रा कितनी होनी चाहिए। लाभ की न्यूनतम मात्रा में परिवर्तन होने पर बिक्री के अधिकतम स्तर में भी परिवर्तन हो जाएगा। इसलिए इस सिद्धान्त द्वारा निर्णय लेने में अनिश्चितता बनी रहेगी।

(2) अवास्तविक मान्याताएँ (Unrealistic Assumptions) : आलोचकों के अनुसार बिक्री अधिकतम करने के लक्ष्य की कई मान्यताएँ जैसे कीमत का स्थिर रहना आदि अवास्तविक हैं।

(3) सीमित क्षेत्र (Limited Scope) : बिक्री अधिकतम करने का लक्ष्य संयुक्त पूँजी कम्पनियों के लिए तो उचित हो सकता है। परन्तु एकल स्वामित्व वाली फर्मे (Single Entrepreneurship Firms) तथा साझेदारी फर्मों के

लिए यह एक उपयुक्त लक्ष्य नहीं है। ये फर्मे बिक्री के स्थान पर लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य को प्राप्त करना अधिक पसन्द करती हैं। इसलिए इस धारणा का क्षेत्र सीमित है।

सन्तुष्टि का अधिकतमकरण

(Maximisation of Satisfaction)

प्रो. सिटोवस्की (Scitovosky) के अनुसार एक फर्म का मुख्य उद्देश्य सन्तुष्टि को अधिकतम करना है। एक उद्यमी भी लाभों की लागत (अर्थात् लाभ कम या मिलने पर भी) सन्तुष्टि को अधिकतम करना चाहता है। यही कारण है कि लाभ के एक स्तर के बाद उद्यमी की मनोवृत्ति यह रहती है कि वह लाभ की तुलना में आराम को अधिक तरजीह (Preference) दे। एक उद्यमी की आय में जैसे–जैसे वृद्धि होती है वह वस्तु के उत्पादन करने में जो प्रयास या मेहनत करता है वह उसकी बजाए अधिक आराम (Leisure) करें। सन्तुष्टि के अधिकतमकरण के उद्देश्य को निम्नलिखित रेखाचित्र नं. 3 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है :

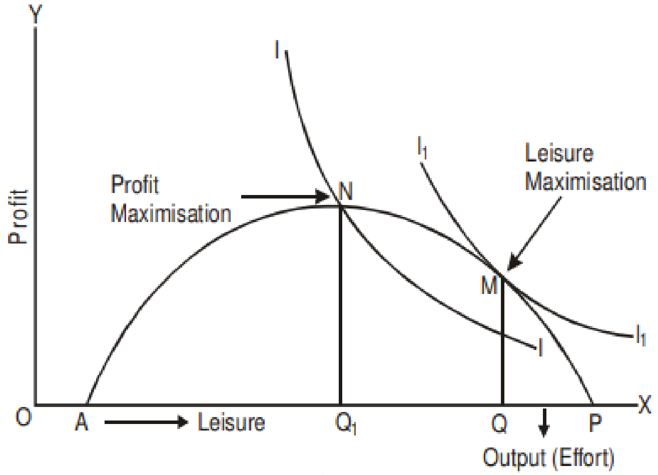

चित्र 5.4

चित्र 5.4 ऊपर रेखाचित्र में, लाभों को OY–अक्षांस और आराम तथा प्रयास (उत्पाद) को OX -अक्षांस पर दिखाया गया है। AP शुद्ध लाभ वक्र है। कुल आय और कुल लागत का अन्तर शुद्ध लाभ है। इस रेखाचित्र में प्रयासों या उत्पादन को बिन्दु P से 0 की ओर मापा गया है। अधिक प्रयासों का अभिप्राय कम आराम और प्रयासों का अर्थ अधिक आराम है। आराम (स्मपेनतम) को OX–अक्षांस पर 0 से P की ओर मापा गया है। II तथा IT दो तटस्थता वक्र हैं। ये दोनों उद्यमी के सन्तुष्टि स्तर को व्यक्त कर रही है जो उसके लाभों तथा आराम के संयोग को बतला रही हैं। उद्यमी की सन्तुष्टि उत्पादन के OQ स्तर पर अधिकतम होगी जहाँ तटस्थता वक्र शुद्ध लाभ वक्र AP को छू रही है। उपरोक्त चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिन्दु ड पर तटस्थता वक्र शुद्ध लाभ का स्पर्श बिन्दु है। अतएव M बिन्दु पर उद्यमी को अधिक स्तुष्टि प्राप्त होगी। अधिक सन्तुष्टि के M बिन्दु पर उद्यमी उत्पादन की PQ मात्रा का उत्पादन करेगा। उपरोक्त रेखाचित्र यह प्रकट करता है कि उद्यमी N बिन्दु पर अधिकतम लाभ प्राप्त करेगा जो शुद्ध लाभ वक्र AP का अधिकतम बिन्दु है। अधिकतम लाभ पर उत्पादन का स्तर PQ होगा। अन्य शब्दों में लाभ के OM स्तर पर, उद्यमी अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करता है क्योंकि वह व्क आराम प्राप्त करता है जो उस व्क, से अधिक है जो वह लाभ अधिकतमकरण (OQ_1) में प्राप्त करता है।

आलोचना (Criticism)

सन्तुष्टि के अधिकतम करने के उद्देश्य की निम्नलिखित आलोचनाएँ हैं :

(1) **अवास्तविक (Unrealistic)** : आलोचकों का यह मत है कि उद्यमियों का काम करने का निर्णय उनके द्वारा कमाए जाने वाले लाभ से स्वतन्त्र है, अवास्तविक है। सच बात यह है कि फर्म कमाए जाने वाले लाभ को कुशलता तथा सफलता का एक सूचक मानती है। लाभ की राशि को ही फर्म की कुशल कार्यप्रणाली का सूचक माना जाता है। अतएव यह कहना अवास्तविक होगा कि कोई फर्म लाभ अधिकतमीकरण की तुलना में सन्तुष्टि अधिकतमीकरण को अधिक पसन्द करेगी।

(2) **सन्तुष्टि एक अस्पष्ट शब्द (Satisfaction on Ambiguous Term)** : सन्तुष्टि शब्द की न तो सही शब्दों में परिभाषा दी जा सकती है और न ही इसे सही रूप से मापा जा सकता है। यह कहना कि कोई फर्म अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करती है, एक सामान्य कथन है और इसे मापा नहीं जा सकता।

सुरक्षित लाभ

(Security Profits)

प्रो. रोथसचाइल्ड (Rothschild) का कहना है कि किसी फर्म का उद्देश्य सुरक्षित लाभ प्राप्त करना होता है। फर्म अधिकतम लाभ से नहीं बल्कि सरक्षित लाभ से प्रेरित होती है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी फर्म अपनी कीमत तथा उत्पादन नीति का निर्धारण करते समय, किसी निश्चित समय अथवा एक समय अवधि में यह उद्देश्य ध्यान में नहीं रखता कि उसे अपने लाभ को अधिकतम करना है बल्कि वह यह बात ध्यान में रखती है कि वह किसी प्रकार एक लम्बी समयावधि तक लाभ का स्थिर प्रवाह प्राप्त कर सकती है। अन्य शब्दों में, फर्म की इच्छा अधिकतम लाभ नहीं बल्कि सुरक्षित लाभ प्राप्त करने की है। रोथसचाइल्ड के शब्दों में, ''एक अन्य उद्देश्य जिसे आसानी से खारिज नहीं किया जा सकता और जो अधिकतम लाभ की भाँति सम्भवतः समान महत्त्व वाला है, वह है सुरक्षित लाभ प्राप्त करने की इच्छा।'' (There is another motive which can not be so lightly dismissed and which is probably of a similar order of magnitude as desire for maximum profit, the desire for secure profits — Rothschild) रोथसचाइल्ड का विचार है कि अधिकतम लाभ का उद्देश्य पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की दशाओं में एक उपयुक्त मान्यता है। पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या इतनी अधिक होती है कि किसी भी निजी फर्म को सुरक्षित लाभों का सामना नहीं करना पड़ता। परन्तु एकाधिकार की अवस्था में प्रतियोगिता के विरुद्ध, एकाधिकार की स्थिति होने से, सुरक्षित लाभ सुनिश्चित करना पड़ता है। रोथसचाइल्ड का कहना है कि अल्पाधिकार की अवस्था में फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम करना नहीं होता, उसे तो वर्तमान फर्मों में अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाए रखना होता है। एक अल्पाधिकारी फर्म का एक मुख्य उद्देश्य अपने आपको दीर्घकाल तक व्यावसायिक कार्य करते रहना होता है। अपनी सुरक्षा बढ़ाने की इच्छा अल्पाधिकारी फर्म को एक स्थिति प्राप्त करने के संघर्ष की ओर ले जाती है और उस उपयुक्त कीमत के तह करने का आग्रह करती है जिससे फर्म को सुरक्षित प्राप्त हो सकें। असल में रोथसचाइल्ड की परिकल्पना (Hypothesis) लाभ अधिकतम करने का ही एक रूप है।

विकास को अधिक करना (Growth Maximisation)

एक फर्म का विकास अधिकतमकरण, आधुनिक निगमों का, एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त को विकसित व समावेश करने का श्रेय श्रीमती पेनरोज (Mrs. Penrose) को जाता है। अपनी पुस्तक "The Theory of Growth of Firms" में उसने सुझाव दिया है कि आधुनिक प्रबन्धक, लाभ अधिकतमीकरण की तुलना में, विकास अधिकतमीकरण के उद्देश्य में अधिक रूचि रखते हैं। परन्तु एक क्रमबद्ध विकास अधिकतमीकरण सिद्धान्त का विकास श्री आर. टी. मारिस (R.T. Marriss) तथा बामोल (Baumoul) ने किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार विकास की दर तथा विकास के सम्भाव्य (Potentials of Growth) दो ऐसे माप यन्त्र हैं जो किसी फर्म की सफलता को मापने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। एक फर्म के प्रबन्धक का उद्देश्य अपनी फर्म के विकास को

अधिकतम करना होता है। फर्म के विकास से अभिप्राय उसके आकार, उत्पादन तथा बिक्री में वृद्धि से है। फर्म, घरेलू तथा विश्व में नए बाजारों का विस्तार करके, अपने आकार को बढ़ा सकती है। यह नई वस्तुओं के निर्माण तथा बढ़ी हुई माँग के द्वारा सम्भव हो सकता है।

एस. के. सियो (S. K. Seo) के शब्दों में, परम्परागत (Conventional) लाभ अधिकतमीकरण मॉडल में फर्म बेशक उत्पादन के उस सन्तुलन स्तर को प्राप्त कर लेती है जो उसको अधिकतम लाभ दिलवाए, परन्तु उत्पादन तब तक स्थिर रहेगा जब तक लागत और माँग स्थिर (Constant) है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि अधिक बिक्री के लिए फर्म उत्पादन का और अधिक विस्तार करे। वास्तव में, सम्भवतया माँग और लागत स्थिर नहीं रहते और फर्म विकास तो करना चाहती है ताकि उसे बिक्री अधिकतम करने के लिए प्रेरणा मिल सके।

किसी भी फर्म को अपना वित्त प्रबन्ध या तो आन्तरिक स्रोतों या बाजार से उधार लेकर या दोनों माध्यम से करना पड़ता है। विकास के लिए आन्तरिक वित्त प्रबन्ध (Internal Financing) उधार लिए जाने वाले कोषों से अधिक वांछनीय या उत्तम है। इसका मुख्य कारण यह है कि उधार ली गई राशि पर दिया जाने वाला ब्याज या उसकी किश्तों में भुगतानगी भावी विकास क्षमता के मार्ग में एक बाधा सिद्ध हो सकती है। परन्तु आन्तरिक वित्त कोष (Internal Funds) में वृद्धि लाभ अधिकतमीकरण द्वारा ही हो सकती है। अतएव विकास को अधिकतम करने का निर्णय आवश्यक रूप से लाभ के अधिकतम करने का निर्णय है। निगम को हथियाने या दूसरे के हाथों में जाने के डर से बचने के लिए प्रबन्धकों को उस विकास दर का चुनाव करना चाहिए जो बाजार मूल्य को अधिकतम कर दे और उस दर को भी अधिक कर दे जिस पर इसका कब्जा लेना अथवा ले लेना (Take Over) होना चाहिए।

आलोचना (Criticism)

विकास अधिकतमीकरण मॉडल की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :

(i) अवास्तविक मान्यताएँ (Unrealistic Assumptions) : लाभ अधिकतमीकरण का सिद्धान्त अति सरल मान्यताओं पर आधारित है। इसमें यह माना गया है कि साधन कीमतें तथा ब्याज की दर स्थिर रहते हैं। यह भी माना गया है कि आय तथा लागत अनुसूचियों में भी समय के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं होता। परन्तु यह मान लेना अवास्तविक है कि मुख्य घटक जैसे लाभ, बिक्री और लागत में उसी दर में वृद्धि होगी।

(ii) वित्त की बाधा (Constraint of Finance) : यह सिद्धान्त वित्त की बाधा की अवहेलना करता है। सच बात तो यह है कि विकास के लक्ष्य को जारी रखने व प्राप्त करने के लिए वित्त आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकता।

(iii) अन्तर्निर्भरता की अवहेलना (Ignores Interdependence) : यह सिद्धान्त अल्पाधिकारी अन्तर्निर्भरता की अवहेलना करता है। सिद्धान्त यह मान कर चलता है कि फर्में कीमतों के बारे में स्वतन्त्र निर्णय ले सकती है।

(iv) एक उपयुक्त विकास दर को प्राप्त करने में कठिनाई (Difficulty in Arriving at an Appropriate Growth Rate) : आलोचकों का यह विचार है कि उस विकास दर को प्राप्त करना कठिन है जो स्टॉक एक्सचेंज में फर्म की शेयरों के बाजार मूल्य को अधिकतम कर सके। उस दर को भी निर्धारित करना इतना आसान नहीं जिस पर कि फर्म को कब्जा लेना (जंम व्अमत) सम्भव हो सके।

(v) विकास की घटती–बढ़ती दरों की अवहेलना (Ignores Variable Rates of Growth) : इस सिद्धान्त का यह मानना या विश्वास करना गलत है कि फर्म स्थिर दर पर विकास करती रहेगी। असल में फर्म एक समय में अधिक तेज गति से और दूसरे समय में धीमी या कम गति से विकास करने का निर्णय ले सकती है।

प्रबन्धकीय उपयोगिता का अधिकतम करना

(Maximisation of Management Utility)

प्रबन्धकीय उपयोगिता अधिकतमीकरण के सिद्धान्त का विकास बरले, मीनज, गैलब्रेथ या विलियमसन (Berle Means & Galbrath and Williamson) ने अलग–अलग ढंग से किया है। इस सिद्धान्त को प्रबन्धकीय विवेक सम्बन्धी सिद्धान्त (Managerial Discretion Theory) भी कहते हैं। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि शेयरहोल्डर या फर्म के स्वामी तथा प्रबन्धक दो अलग–अलग समूह हैं। स्वामी (Owners) या शेयरहोल्डर अधिक लाभांश (High Dividend) की अपेक्षा करते हैं और इसलिए उनकी रुचि लाभों को अधिकतम करने की है। दूसरी ओर प्रबन्धकों के लाभ अधिकतमीकरण के अतिरिक्त कुछ विभिन्न उद्देश्य हैं। प्रबन्धक जैसे ही लाभ के एक ऐसे रूप को प्राप्त कर लेते हैं जो शेयरहोल्डरों को एक सन्तोषजनक लाभांश प्रदान करा सके और फिर भी विकास बना रहे। इसके बाद प्रबन्धक अपनी आय (Emoluments) बढ़ाने तथा अपने स्टॉफ की संख्या में अधिक करने व उन पर होने वाले व्यय के सम्बन्ध में स्वतन्त्र है। विलियमसन के शब्दों में, ''जहाँ तक पूँजी बाजार में दबाव और वस्तु बाजार में प्रतियोगिता अपूर्ण है, इसलिए प्रबन्धक अपने विवेक से लाभों के अलावा अन्य उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं।'' (To the extent that the pressure from the capital market and competition in the product market is imperfect, the manager, therefore, has discretion to pursue goals other than profits. — Williamson)

बरले तथा मीनज (Berle and Means) ने यह सुझाव दिया है कि ''निगम प्रजातन्त्र का अभाव मालिकों या शेयरहोल्डरों के लिए निगम नीति में परिवर्तन के लिए बहुत कम या कोई भी शक्ति नहीं छोड़ पाता।'' (Lack of corporate democracy leaves owners or shareholders with little or no power to change corporation policy)

विलियमसन (Williamson) के अनुसार प्रबन्धकीय उपयोगिता फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$$u=f\,(S, M, ID)$$

इसे पढ़ा जाएगा : प्रबन्धकीय उपयोगिता स्टॉफ पर अतिरिक्त व्यय, प्रबन्धकीय आय तथा विवेकाधीन निवेश का फलन है।

यहाँ (u = प्रबन्धकीय उपयोगिता, S = स्टॉफ पर अतिरिक्त व्यय, M = प्रबन्धकीय आय (Emoluments) तथा ID = विवेकाधीन निवेश (Discretionary Investment)।

प्रबन्धकीय उपयोगिता फलन, फर्म के लाभों की तुलना में प्रबन्धकों की उपयोगिता को अधिकतम करता है। प्रबन्धक से उन नीतियों के अनुसरण करने की अपेक्षा की जाती है जो उसके उपयोगिता फलन के निम्न घटकों को अधिकतम करते हैं :

(i) स्टॉफ का विस्तार (Expansion of Staff) : प्रबन्धक अपने अधीन काम करने के स्टॉफ की कोटि (Quantity) तथा संख्या बढ़ाना पसन्द करेगा। इससे स्टॉफ को मिलने वाले वेतन में वृद्धि की जाएगी। अधिक स्टॉफ के होने से प्रबन्ध अधिक वेतन, अधिक सम्मान तथा अधिक सुरक्षा प्राप्त कर पाएगा।

(ii) प्रबन्धकीय आय में वृद्धि (Increase in Managerial Emoluments) : प्रबन्धकीय उपयोगिता प्रबन्धकीय आय पर भी निर्भर करती है। इसमें निम्नलिखित सुविधाएँ शामिल होती हैं: मनोरंजन भत्ता, विलासपूर्ण बढ़िया, ऑफिस, स्टॉफ कार, कम्पनी, टेलीफोन आदि। इस प्रकार का व्यय काफी सीमा तक प्रबन्ध के सम्मान, शक्ति तथा रुतबों का संकेत देता है।

(iii) निवेश की विवेकशील शक्ति (Discretionary Power of Investment) : प्रबन्धकीय उपयोगिता, प्रबन्धक के इस विवेक पर भी निर्भर करती है कि वह सामान्य प्रचालन (Operation) के अतिरिक्त कितना निवेश करता है। प्रबन्धक इस स्थिति में होता है कि विकसित टैक्नालिजी तथा आधुनिक प्लांटों में निवेश करे। हो सकता है कि किए जाने वाले ऐसे निवेश आर्थिक दृष्टिकोण से कुशल हो भी सकते हैं और नहीं भी। ये निवेश सामान्यतया प्रबन्धक की निजी सन्तुष्टि से सम्बन्धित होते हैं।

आलोचना (Criticism)

प्रबन्धकीय उपयोगिता फलन की आलोचना अधिकतम अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित आधार पर की हैं :

(i) अस्पष्ट (Ambiguous) : प्रबन्धक के कार्य में मौद्रिक तथा गैर–मौद्रिक का मिला देना प्रबन्धकीय उपयोगिता फलन को अस्पष्ट बना देता है।

(ii) अधिक संगठनात्मक शिथिलता (More Organisational Slack) : उपयोगिता–अधिकतमीकरण प्रबन्ध के द्वारा प्रबन्धित फर्मों में स्टॉफ पर बहुत अधिक व्यय किया जाता है और लाभ–अधिकतमीकरण फर्मों की तुलना में यह संगठनात्मक शिथिलता को अधिक प्रदर्शित करता है।

(iii) गैर–मौद्रिक लाभों को कम महत्त्व (Less Weightage to Non & monetary Benefits): आलोचकों का यह मत है कि मुआवजे का माप वेतन के अतिरिक्त मुआवजे को अधिक या पर्याप्त भार (Weightage) अथवा महत्त्व नहीं देता। इसके परिणामस्वरूप वास्तविक जीवन में प्रबन्धकों के लाभ अधिकतम करने वाले व्यवहार का गंभीरता से कम अनुमान (Underestimate) लगाया जा सकता है।

सन्तोषप्रद सिद्धान्त (Satisficing Theory)

लाभ की सन्तोषप्रद नीति का प्रतिपादन प्रो. हर्टबर्ट साइमन (Herbert Simon) ने किया था। उनका विचार था कि आँकड़ों की पूर्णता तथा वास्तविक जीवन में अनिश्चितता बने रहने के कारण, किसी भी फर्म की लाभ नीति लाभ को अधिकतम करना नहीं बल्कि सन्तोषप्रद लाभ प्राप्त करना है। सन्तोषप्रद शब्द का अर्थ सम्पूर्ण निष्पादन (Performance) या उपलब्धि से है। फर्म की इच्छा उत्पादन का सन्तोषजनक स्तर प्राप्त करना, बाजार का सन्तोषजनक शेयरध्भाग प्राप्त करना, लाभ का सन्तोषजनक स्तर प्राप्त करना आदि होता है। फर्म एक लाभ अधिकतम करने वाले उद्यम के स्थान पर सन्तोषप्रद संगठन है। (The firm is a satisficing organisation rather than a maximising entrepreneur)

हर्बर्ट साइमन (Herbert Simon) के शब्दों में, "हमारे लिए धर्म का लक्ष्य लाभ अधिकतम करना नहीं होना चाहिए बल्कि लाभ का एक निश्चित स्तर अथवा दर प्राप्त करना, बाजार के एक स्तर को हासिल करना या बिक्री के एक स्तर को प्राप्त करना होना चाहिए।" (Weexpect firm's goals to be not maÛimising profit but attaining certain level or rate of profit, holding a certain level of market or certain level of sales- Herbert Simon) प्रत्येक फर्म लाभ के कुछ न्यूनतम स्तर की अपेक्षा रखती है। जब उसको यह लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो वह अपनी स्थिति को और आगे सुधारने की आकांक्षा नहीं रखेगी। इसके विपरीत फर्म यदि यह आकांक्षा स्तर (Aspiration Level) या लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रहती है, तो वह अपने इस स्तर को और नीचे की दिशा की ओर परिशोधित (Revise) करेगी। फर्म दोबारा विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रयास करेगी ताकि वह भविष्य में इस आकांक्षा स्तर को प्राप्त कर सकें। अतः फर्म का उद्देश्य अधिकतम (Maximising) न होकर सन्तोषप्रद (Satisficing) होता है।

साइमन (Simon) के अनुसार, निजी व्यक्तियों की भाँति फर्मों के भी लक्ष्य हो सकते हैं और इन लक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन (Review) किया जाता है। लक्ष्यों तथा आकांक्षाओं से सम्बन्धित तीन स्थितियाँ हो सकती हैं :

(i) वास्तविक कार्यकरण आकांक्षा की तुलना में कम होय

(ii) वास्तविक कार्यकरण आकांक्षा के बराबर होय और

(iii) वास्तविक कार्यकरण आकांक्षा से अधिक हो।

पहली स्थिति, भविष्य की अपूर्ण सूचना के कारण हो सकती है। प्रबन्ध खोज व्यवहार (Search Behaviour) शुरू करता है ताकि वह आकांक्षा स्तर से दूर होने का कारण ढूँढ सके। ऐसा सम्भव है कि विभिन्न उद्देश्यों के लिए आकांक्षा स्तर को बहुत ऊँचा रखा गया हो और निम्नलिखित स्थितियों में वास्तविक उपलब्धि आकांक्षा स्तर से पीछे रह गई हो। (a) जहाँ आर्थिक क्रियाओं में व्यापक उतार–चढ़ाव है, (b) जहाँ कार्यकरण में बढ़ती दर पर सुधार न हो रहा हो। यदि आकांक्षा स्तर अप्राप्य रह जाता है, तब इसको नीचे की ओर दोहराया या संशोधित किया जाता है।

दूसरी स्थिति, वास्तविक उपलब्धि आकांक्षा के बराबर होती है। मूल्यांकन (Review) करने पर यह पाया जाता है कि लक्ष्यों को जानबूझकर कम स्तर पर रखा गया है तब इनका ऊपर की ओर संशोधन (Upward Revision) किया जाएगा।

तीसरी स्थिति, प्रशंसनीय स्थिति है। परन्तु फिर भी यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि यह स्थिति उपलब्धि की घटती हुई क्वालिटी का परिणाम नहीं है।

उपरोक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है सिवाय पहली स्थिति के, जहाँ फर्म का वास्तविक कार्यकरण आकांक्षा स्तर से कम है, फर्म काफी सीमा तक सन्तोषप्रद होगी। वर्तमान प्रक्रिया आगे भी चलती रहेगी। परन्तु आकांक्षा स्तर से दूर जाने की स्थिति में फर्म को खोज व्यवहार अपनाना होगा। परन्तु साइमन के अनुसार खोज व्यवहार ́मंतबी ठमींअपवनत) की एक सीमा होती है क्योंकि खोज व्यवहार के लिए प्रबन्धकों को अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा।

संक्षेप में, चूंकि प्रबन्ध केवल सीमित वैकल्प ही खोज सकता है, इसलिए लाभ अधिकतम करने वाले वैकल्प की अपेक्षा सन्तोषप्रद वैकल्प उपयुक्त है। अतएव कोई भी सयानी फर्म अधिकतमकरण करने की तुलना में सन्तोषप्रद को उद्देश्य मानकर चलती है। यह सिद्धान्त कुछ वास्तविक विश्वसनीय स्थिति बतलाने में सहायता देता है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त लाभ की व्यवहार–सम्बन्धी नीति का आधार है।

आलोचना (Criticism)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचना यह है कि यह सिद्धान्त अस्पष्ट है। यह स्पष्ट रूप से इस बात की व्याख्या नहीं करता कि सन्तोषप्रद स्तर क्या है तथा असन्तोषप्रद प्राप्ति क्या है। सन्तोषप्रद स्तर को आसानी से निर्धारित नहीं किया जा सकता। सन्तोषप्रद स्तर, व्यक्तियों तथा स्थितियों के आधार पर, कई हो सकते हैं।

सायर्ट तथा मार्च की व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त

(Cyert and March's Behavioural Theory)

फर्म के व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिपादन सायर्ट तथा मार्च ने अपनी पुस्तक "Behavioural Theory of the Firm" में किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार फर्म एक बहु–लक्ष्य एवं बहु–निर्णय वाला संगठन है। इसके अन्तर्गत फर्म से सम्बन्धित विभिन्न समूह जैसे मैनेजर, शेयरधारक, श्रमिक, ग्राहक आदि शामिल होते हैं। प्रत्येक समूह का अपना लक्ष्य होता है। शेयरधारक का लक्ष्य अधिक लाभ है, प्रबन्ध का उद्देश्य अधिक वेतन है, श्रमिकों का उद्देश्य अधिक मजदूरी है। ये विभिन्न समूह फर्म के लक्ष्य निर्धारित करते हैं। एक फर्म के वास्तविक लक्ष्य वरिष्ठ प्रबन्धकों द्वारा विभिन्न समूहों से विचार–विमर्श करके निर्धारित किए जाते हैं। ये लक्ष्य कई प्रकार के हो सकते हैं : (i) उत्पादन लक्ष्य, (ii) बिक्री लक्ष्य, (iii) मालसूची लक्ष्य, (iv) लाभ लक्ष्य, (v) बाजार माँग लक्ष्य आदि। यदि ये

लक्ष्य प्राप्त नहीं होते तो नए प्रबन्धकों की नियुक्ति की जाती है जो दोबारा लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं। वरिष्ठ प्रबन्धक संगठन के ट्रस्टी के रूप में कार्य करते हैं जो केवल शेयर धारकों के प्रति नहीं बल्कि श्रमिकों तथा ग्राहकों के प्रति भी उत्तरदायी होते हैं। ये प्रबन्धक लाभ अधिकतम के स्थान पर सन्तुष्टि अधिकतम के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। संक्षेप में, फर्म का व्यवहार–सम्बन्धी सिद्धान्त सन्तुष्टीकरण को ही फर्म का मुख्य लक्ष्य मानता है।

पूर्ण प्रतियोगीता बाजार

(Perfect Competition Market)

यह बाजार ही वह अवस्था हैं जिसमें अनेक क्रेता तथा विक्रेता होते हैं। सभी उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ समरूप होती है। अर्थात पूर्ण स्पानापन्न होती हैं। इस बाजार में उद्योग में फर्मों को प्रवेश करने तथा छोड़ने की स्वतत्रता होती है। इस बाजार में एक फर्म कि कीमत स्वीकारक होती है बाकि कीमत निर्धारक क्योंकि इस बाजार में कीमत का निर्धारण उद्योग द्वारा किया जाता है और सारे बाजार में वस्तु की एक कीमत का प्रवलन होता है। विक्रय लागतों का इस बाजार में कोई महत्व नहीं होता है। इस बाजार की विशेषताएँ या मान्यताएँ निम्नलिखिति हैं

(1) अनेक क्रेता तथा विक्रेता : पूर्ण प्रतियोगी बाजार में वस्तु के बहुत अधिक क्रेता तथा विक्रेता होते हैं। अर्थात कोई भी अकेला क्रेता या विक्रेता अपनी क्रियाओं से बाजार कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता है।

(2) समरूप वस्तुएँ : इस बाजार में जो वस्तुए बेची जाती हैं। वे रंग रूप आकार तथा गुणों में समान होती है। अर्थात् एक विक्रेता की वस्तु दूसरे विक्रेता की वस्तु का पूर्ण स्थानापन्व होती है।

(3) फर्मों को उद्योग में प्रवेश करने तथा उद्योग को छोड़ने की स्वतनाता : इस बाजार में किसी नई फर्म को उद्योग में प्रवेश करने तथा पुरानी फर्मों को उद्योग छोड़ने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। जब उद्योग में असमान्य लाभ प्राप्त हो रहे हो तो नई फर्मे उद्योग में प्रवेश कर सकती हैं और यदि उद्योग में हावी हो तो पूरानी फर्मे उद्योग को छोड़ कर जा सकती है।

(4) कीमत स्वीकार होती है न कि कीमत निर्धारक : इस बाजार में वस्तु की कीमत उद्योग द्वारा निर्धारित होती है। जहाँ बस्तु की माँग तथा पूर्ति आपस में समान होते हैं। प्रत्येक फर्म को उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत स्वीकार करनी पड़ती हैं।

(5) पूर्ण ज्ञान : इस बाजार में सभी क्रेताओं तथा विक्रेताओं को वस्तु की कीमत की पूरी अर्थात पूर्ण जानकारी होती है। उनको इस बात का पता होता है कि बाजार के किस भाग में किस कीमत पर वस्तु के सौदे हो रहे हैं।

(6) साधनों में पूर्ण गतिशीलता : पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु बाजार तथा साधान बाजार दोनों में पूर्ण गतिशीलता होती है। अर्थात वस्तुएँ तथा साधन कम मूल्य बाजार से अधिक मूल्य बाजार में जाने के लिए स्वतंत्र होती हैं।

(7) परिवहन तथा विक्रय लागतों का अभाव : इस बाजार की यह मान्यता है कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिऐ वस्तु की कोई परिवहन लागत नहीं होती है।

(8) एक कीमत का प्रचलन : इस बाजार में एक समय में एक विशेष वस्तु की सारे बाजार में केवल एक ही कीमत प्रचलीत होती है। अर्थात माँग पूर्णतया लोचदार होती है।

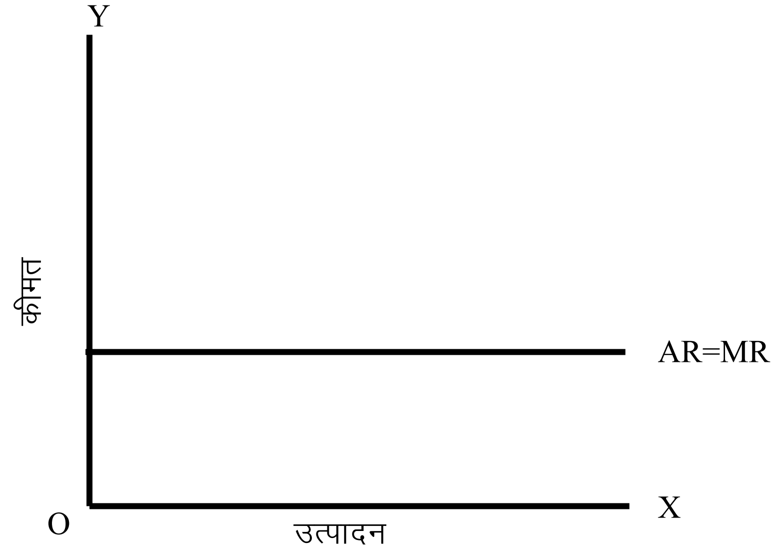

पूर्ण प्रतियोगिता में सन्तुलन

एक फर्म या उत्पादन उस समय सन्तुलन की स्थिति में होती है। जब वह अधिकतम लाभ कमा रहा हो या उसे न्यूनतम हानि हो रही हो। इस स्थिति में न तो फर्म अपने उत्पादन को घटाना चाहती है और न ही उत्पादन की मात्रा में बढ़ाना चाहती हैं।

अल्पकाल में सन्तुलन

अल्पकाल समय की वह अवधि है जिसमें उत्पादन में वृद्धि करने के लिए केवल परिवर्तनशील साधनों को ही बदला जाता है। जैसे, श्रम, बिजली, कच्चा माल आदि। परन्तु उस अवधि में स्थिर साधनों जैसे भूमि, मशीनरी, कारखाना, भवन इत्यादि स्थिर रहते हैं। अल्पकाल में न तो कोई नई फर्म उद्योग में प्रवेश कर सकती हैं और ना ही पूरानी फर्म उद्योग को छोड़कर जा सकती हैं। इस अवधि में फर्म उस बिन्दू पर सन्तुलन में होती हैं। जब निम्न दो शर्ते पूरी होती हैं

1. MC=MR
2. MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटती है।

अल्पकाल में फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि भी हो सकती है।

असामान्य लाभ

फर्म को उस समय असामान्य लाभ होंगे जब होगे तब

रेखाचित्र 5.6 में

AR=EQ

AC=FQ

AR>AC

∴ फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

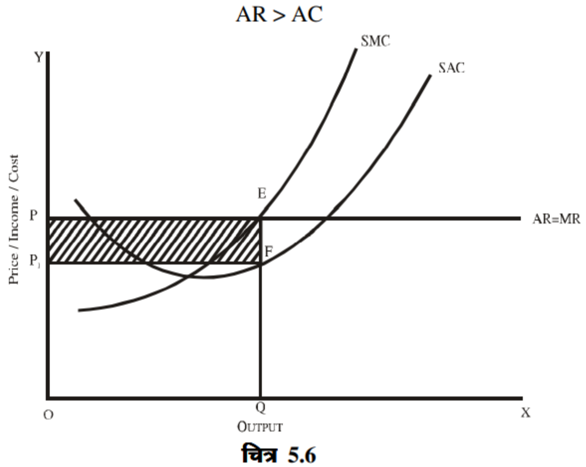

चित्र 5.6

लाभ प्रति इकाई =AR-AC=EQ-FQ=EF

कुल लाभ = लाभ प्रति इकाई x कुल उत्पादन

= EF X OQ

= EFP_1F

= PP_1EF

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि फर्म E बिन्दू पर सन्तुलन में होगी क्योंकि इस बिन्दू पर MC=MR हैं। सन्तुलित कीमत OP निर्धारित होगा। सन्तुलित उत्पादन OQ होगा। तथा फर्म को PP_1EF समान असामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

सामान्य लाभ

फर्क को उस समय अल्पकाल में सामान्य लाभ प्राप्त होंगे जब AR=AC

रेखाचित्र में

AR =EQ

AC =EQ

∴ AR = AC

∴ फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

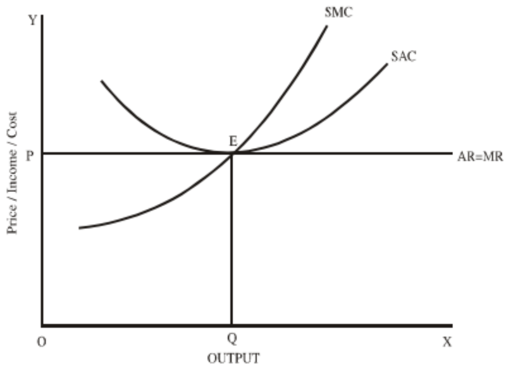

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि फर्म E बिन्दू पर सन्तुलन में होगी। क्योंकि इस बिन्दू पर MC वक्र MR हैं और MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटती है। इस स्थिती में सन्तुलित कीमत OP तथा सन्तुलित उत्पादन OQ किया जायेगा। इस अवस्था में AR=AC है। इसलिये उद्यमी को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होंगे।

न्यूनतम हानि

अल्पकाल में सन्तुलन की अवस्था में फर्म को उस समय न्यूनतम हानि सहन करनी पड़ती है। जब AR <AC

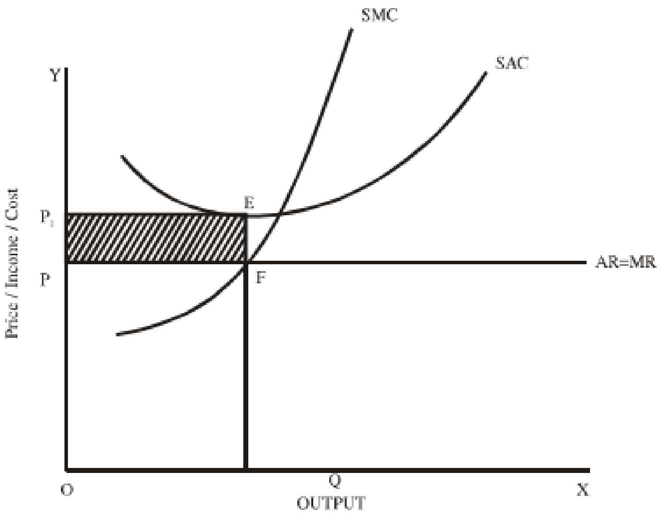

चित्र 5.8

रेखाचित्र में

$$AR = EQ$$
$$AC = FQ$$
$$AC > AR$$

∴ फर्म को हानि होगी

हानि प्रति इकाई $= AC - AR$

$= FQ - FQ = EF$

कुल हानि = हानि प्रति इकाई x कुल उत्पादन

EF x OQ

$EF \times PE = PP_1FF$

फर्म का सन्तुलन E बिन्दू पर सन्तुलन में होगी। क्योंकि इस बिन्दू पर MC=MR और MC वक्र MR को नीचे से काट रही है। सन्तुलीत कीमत OP तथा सन्तुलीत उत्पादन OQ निर्धारित होगी। फर्म को PP_1EF के समान हानि सहन करनी पड़ेगी।

अल्पकाल में उद्योग का सन्तुलन

दी हुई बाजार माँग और दी हुई बाजार पूर्ति की स्थिती में उद्योग उस बिन्दू पर सन्तुलन में होगा जिस बिन्दू पर वस्तु की माँग तथा पूर्ति समान होती है। निम्न रेखाचित्र में OP कीमत पर उद्योग सनतुलन में होगा। क्योंकि इस स्थिति में वस्तु की माँग तथा पूर्ति समान है। परन्तु यह अल्पकालीन संतुलन है। यदि इस कीमत पर फर्म को अति अधिक लाभ हो रहा है। या अति अधिक हानि हो रही है तो दीर्घकाल में वे फर्मे जो हानि उठा रही हैं वे अपने उत्पादन को कम या बन्द कर देगी। वे फर्मे जो अधिक लाभ प्राप्त कर रही हैं उत्पादन महत्व बढ़ा देगी तथा साथ–साथ उद्योग में नई फर्मे प्रवेश कर जायेगी। इस प्रकार दीर्घकालीन सन्तुलन स्थापित हो जायेगी। जिससे सभी फर्मों को सामान्य लाभ प्राप्त होंगे और इससे न तो नई फर्मे उद्योग में प्रवेश करेगी तथा न ही पूरानी फर्मे उद्योग छोड़कर जायेगी। अल्पकाल में उद्योग के सन्तुलन की स्थिति को निम्न रूप से दर्शाया जा सकता है।

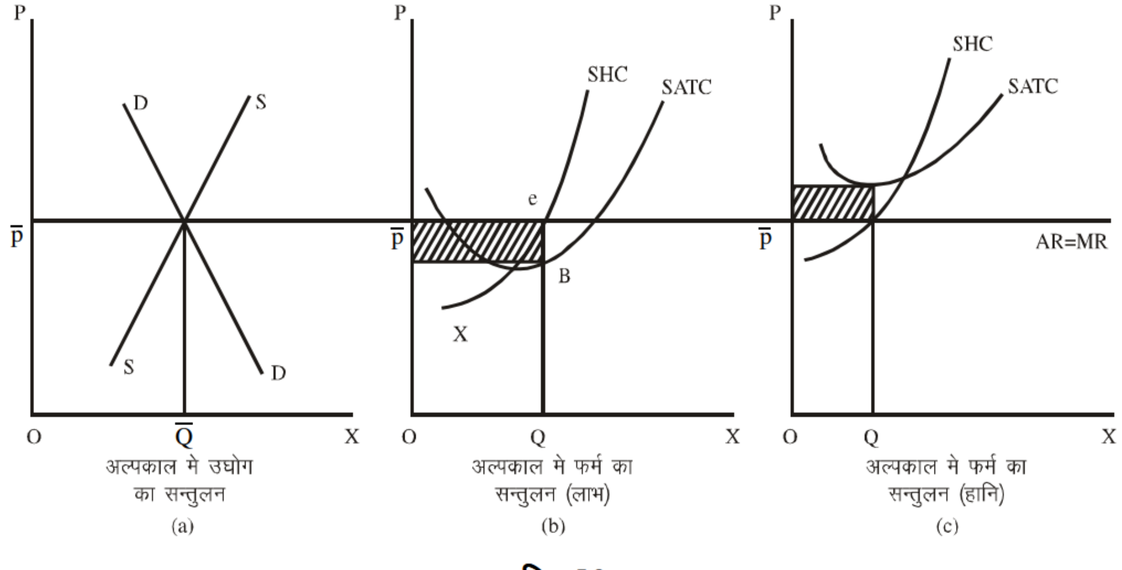

चित्र 5.9

दीर्घकाल मे फर्म का सन्तुलन

दीर्घकाल समय की वह अवधि होती है जिससे उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। पूर्ति को माँग के अनुसार घटाया–बढ़ाया जा सकता है। उद्योग की वर्तमान फर्मे अपने प्लॉट के आकार को छोटा या बड़ा कर सकती है। दीर्घकाल में फर्मे उसी स्थिति में सन्तुलन में होती है जिसमे MR=MC होती है और MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रही है। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में उद्योग की सभी फर्में सामान लाभ ही प्राप्त कर सकती हैं।

दीर्घकाल में फर्में उस समय सन्तुलन में होती हैं। जब दीर्घकालीन AC वक्र के न्यूनतम बिन्दू पर उत्पादन करने के लिए अपने प्लॉट को समायोजित कर लेती हैं। दीर्घकाल में फर्म केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर सकती है। जो LMC मे शामिल होता है।

यदि फर्मे असामान्य लाभ प्राप्त कर रही हैं तो नई फर्मे प्रवेश करेंगी जिसके कारण कीमत कम हो जायेगी और लागत वक्र ऊपर की ओर बढ़ेगा क्योंकि उत्पादन के साधनों की कीमत बढनी आरम्भ हो जायगी। जैसे–जैसे उद्योग का विस्तार होगा ये परिवर्तन तब तक जारी रहेंगे जब तक LAC बाजार कीमत द्वारा परिभाषित माँग वक्र को नहीं छूती हैं। यदि दीर्घकाल में फर्म को हानि हो रही है तो कुछ फर्मे उद्योग को छोड़ जायेगी। जिससे कीमतें बढ़ेगी तथा लागत कम हो जायेगी। जैसे–जैसे उद्योग का संकुचन होता है। इसलिए दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगे।

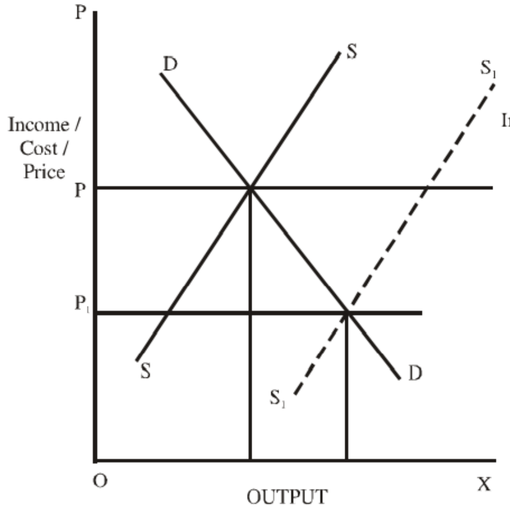

चित्र 5.10

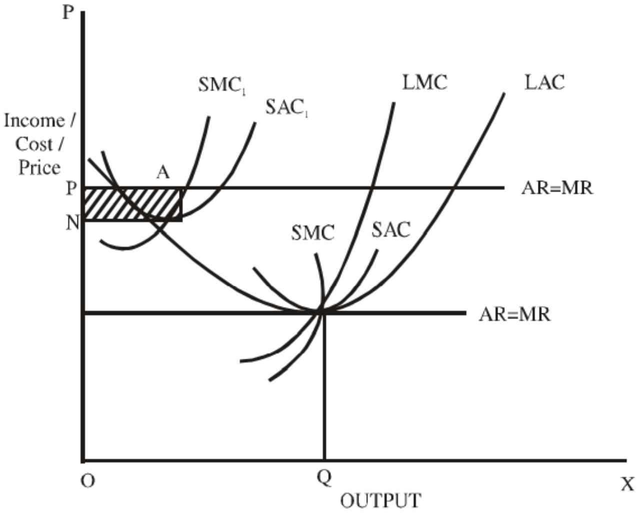

चित्र 5.11

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि यदि कीमत OP है तो वह फर्म जिसकी लागतों को SAC_1, SMC_1 द्वारा दर्शाया गया है। फर्म असामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। यह फर्मे लाभ कमाने के लिये अपनी उत्पादन क्षमता को बढ़ाने का यत्न करेंगी और यह LAC पर खिसकना आरम्भ कर करेगी। इसके साथ–साथ कई फर्में उद्योग में प्रवेश करेगी और इस प्रकार बाजार वक्र खिसक S से S_1 हो जायेगी। जब तक कीमत OP से कम होकर OP_1 नहीं हो जाती है।

दीर्घकालीन सन्तुलन के लिये फर्म की दीर्घकालीन सीमान्त लागत कीमत के सामन होनी चाहिए। तथा दीर्घकालीन औसत लागत के सामन होनी चाहिए

$$LMC = LAC = P$$

दीर्घकाल में Q अपने प्लॉट के आकार को उत्पादन के उस स्तर तक समायोजित करेंगी जिस पर दी हुई उत्पादन तकनीक और दी हुई उत्पादन साधनों की कीमतों पर LAC न्यूनतम हो सके। अतः दीर्घकाल में सन्तुलित फर्म के लिये निम्न शेर्ते होगी। इस स्थिती में फर्म अपना आदर्श उत्पादन करेगी और LAC तथा SAC न्यूनतम होते है।

$$SMC = LMC = LAC = LMC = P = MR$$

दीर्घकाल में उद्योग का सन्तुलन

दीर्घकाल में उद्योग का सनतुलन उस कीमत पर होता है। जब उद्योग में शामिल सभी फर्मे सन्तुलन में होती हैं। और वे न्यूनतम LAC पर उत्पादन करती हैं और उन्हें केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते है। इस स्थिती में उद्योग में न तो नई फर्मे उद्योग में प्रवेश करती हैं तथा न ही पूरानी फर्मे उद्योग को छोड़ती हैं। उद्योग के सन्तुलन को निम्न रेखाचित्र में दर्शाया गया हैं।

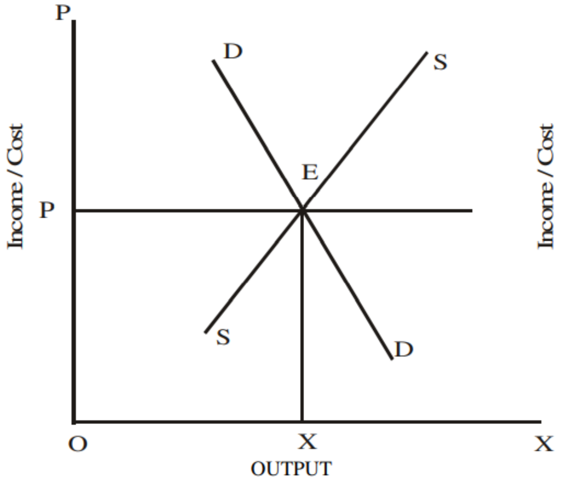

चित्र 5.12

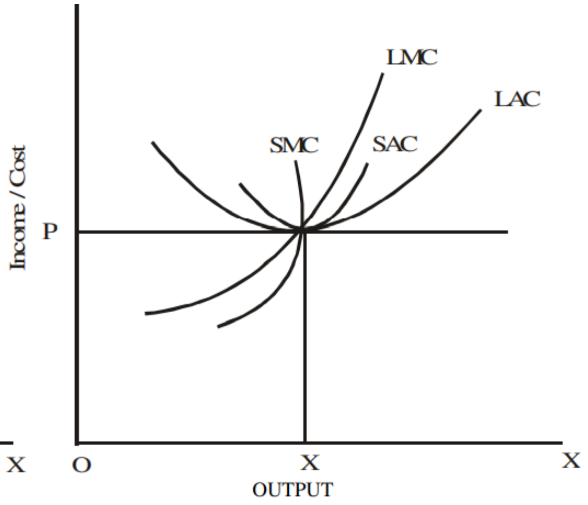

चित्र 5.13

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि बाजार कीमत OP है तो प्रत्येक फर्म न्यूनतम लागतो पर उत्पादन करती हैं और उन्हें केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं। फर्म उत्पादन के OX स्तर पर सन्तुलन में होगी और निम्न अवस्था में फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होते हैं।

$$LMC=SMC=P=MR$$

सभी फर्मों को इस स्थिती में केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं। इसलिये न तो काई फर्म उद्योग में प्रवेश करेंगी तथा न होई फर्म उद्योग को छोड़कर आयेगी। अर्थात उद्योग में पूर्ण सन्तुलन में होता हैं क्योंकि निम्न शर्ते पूरी होती हैं।

$$LAC=SAC=P$$

अर्थात् उद्योग OP कीमत पर सन्तुलन में होता है। जब सभी फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहे हो। इस स्थिती में ना तो कोई नई फर्म उद्योग में प्रवेश करती और ना ही कोई पूरानी फर्म उद्योग को छोड़ना चाहती हैं।

अल्पकालीन पूर्ति चक्र

(Short Run Supply Curve)

1. **फर्म का अल्पकालीन पूर्तिवक्र** : अल्पकाल समय की वह अवधि है जिसमे फर्म केवल घटते बढ़ते साधनों में परिवर्तन करके पूर्ति में परिवर्तन कर सकती है। फर्म के पास इतना समय नहीं होता कि वह बन्धे साधनों में

भी परिवर्तन कर सके। इसलिए अल्पकाल में यदि फर्म थोड़े समय के लिए भी उत्पादन करना बन्द कर भी दे तो भी बन्धी लागत का व्यय उठाना ही पड़ेगा। अतएव अल्पकाल में यदि कीमत औसत घटती–बढ़ती लागत के बराबर भी है तो फर्म वस्तु की पूर्ति करती रहेगी। अतएव एक फर्म उस समय तक एक वस्तु की पूर्ति करती रहेगी जब तक एक अतिरिक्त इकाई की सीमान्त लागत उस इकाई की औसत कीमत के बराबर नहीं हो जाती है।

पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में फर्म के उत्पादन की कीमत (AR) तथा सीमान्त आय (MR) बराबर होते हैं। इसलिये फर्म उस सीमा तक उत्पादन करती रहेगी जब तक सीमान्त आय (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) बराबर नही हो जाती है।

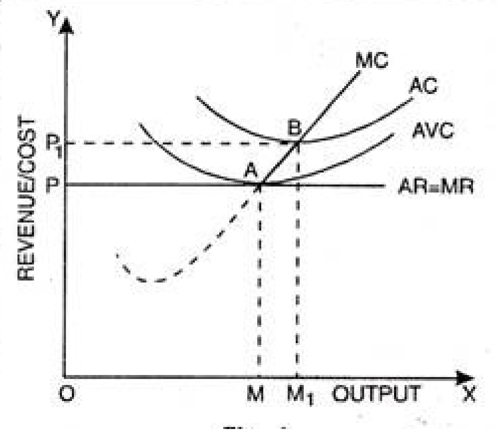

चित्र 5.14

रेखाचित्र मे MC सीमान्त लागत वक्र, AC औसत लागत वक्र तथा ACV औसत घटती–बढ़ती लागत वक्र है। फर्म OP कीमत से कम कीमत पर कोई पूर्ति नहीं करेगी क्योंकि OP कीमत से कम पर फर्म को औसत घटती–बढती लागत की भी हानि होगी। OP कीमत पर OM वस्तुओं की पूर्ति करेगी। सन्तुलन A बिन्दू पर होगा। अतएव फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र बिन्दू A से आरम्भ होने वाला सीमांत लागत (MC) वक्र होगा।

उद्योग का अल्पकालीन पूर्ति वक्र

इस उद्योग का पूर्ति वक्र उस उद्योग की सब फर्मों के पूर्ति वक्रों का समस्तर जोड़ होता है। उसे निम्न रेखाचित्र में दर्शाया गया हैं।

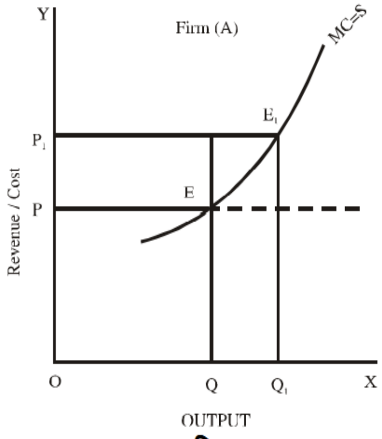

चित्र 5.15

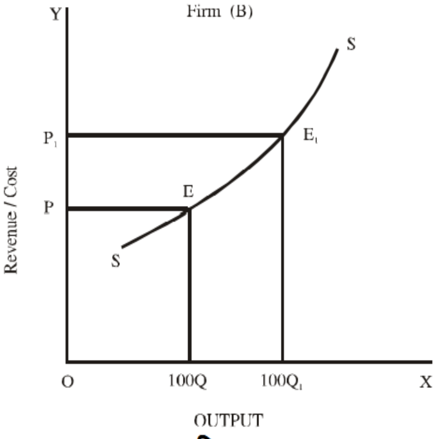

चित्र 5.16

मान लीजिए उद्योग में 100 समरूप फर्मे हैं। उनमें से प्रत्येक एक निश्चित कीमत OP पर समान मात्रा OQ का उत्पादन कर रही हैं। अतएव OP कीमत पर उद्योग की पूर्ति 100xQ=100Q होगी। उत्पादन की यह मात्रा सभी फर्मों के कुल उत्पादन का जोड़ है। इसी प्रकार OP, कीमत पर उद्योग की सभी फर्मे $100Q_1$ मात्रा का उत्पादन करेगी। इन मात्राओं को उद्योग की पूर्ति कहा जायेगा। SS वक्र उद्योग का प्रर्ति वक्र है।

वक्र के E बिन्दू से ज्ञात होता है कि जब कीमत OP है तो उद्योग की कुल पुर्ति 100xQ=100Q होगा। OP_1 कीमत पर जब फर्म की पूर्ति OQ, होगी तो उद्योग की पूर्ति जैसा कि बिन्दू E, से ज्ञात होता है। बिन्दू E तथा E आदि को मिलाने से उद्योग का पूर्ति वक्र ज्ञात हो सकती है।

दीर्घकालीन पूर्ति वक्र

1. फर्म का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र : दीर्घकाल में फर्म केवल न्यूनतम औसत लागत पर ही उत्पादन करेगी। इस अवस्था में सीमान्त लागत, सीमान्त आय तथा औसत आय भी न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी अर्थात

LMC=MR=LAC=AR

फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होंगे। इसलिये सीमान्त लगाव का यह विशेष बिन्दू ही दीर्घकाल में फर्म की पूर्ति निर्धारित करेगा जिस पर वह न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगा। इस सन्तुलन बिन्दू को द्वष्टतम उत्पादन का बिन्दू कहा जायेगा। अतएव एक फर्म का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र सीमान्त लागत वक्र का वह भाग है। जो न्यूनतम औसत लागत से शुरू होता है।

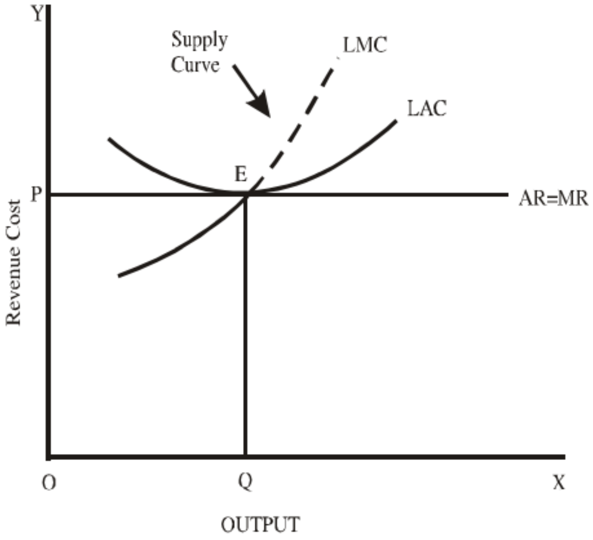

चित्र 5.17

उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र : दीर्घकाल में एक उद्योग का पूर्ति वक्र फर्मों की दीर्घकालीन पूर्ति द्वारा ही निर्धारित किया जाता है। परन्तु उद्योग का दीर्घकालीन पुर्ति वक्र अल्पकाल की तरह फर्मों के पूर्ति वक्रों का समस्तर जोड़ नही होता है। उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र फर्म के द्वष्टतम आकार में होने वाले परिवर्तन तथा फर्मों की संख्या में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर करता है। इसके दो कारण हैं

(i) दीर्घकाल में उद्योग में फर्मो का प्रवेश तथा छोड़ना जारी रहता है।

(ii) फर्मों को पैमाने की बचतें तथा हानियाँ भी उठानी पड़ती हैं।

इसीलिये फर्मों की दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (LMC) अपने स्थान से हिल जाती है। इन्ही कारणों से उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र कर्मो के पूर्ति वक्रों का समस्तर जोड़ नही होता। वास्तव में उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र एक फर्म के दीर्घकालीन इण्टतम उत्पादन तथा उद्योग में फर्मों की संख्या को गुणा करके ज्ञात किया जाता है। अर्थात्

S = Q X N
S = Long run supply of industry
Q = Optimum output of a firm
N = Number of firms

एकाधिकार

(Monopoly)

एकाधिकार बाजार की वह अवस्था है। जिसमें किसी वस्तु का अकेला विक्रेता या उत्पादक होता है। उसके द्वारा उत्पादित वस्तु के बाजार में निकटतम स्थानापन्न नहीं होते हैं। एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है और इस बाजार में नई फर्मों के प्रवेश पर कठोर प्रतिबन्ध होते हैं। एकाधिकारी फर्म कीमत निर्धारक होती है बाकि कीमत स्वीकारक। एकाधिकारी फर्म माँग की लोच के आधार पर कीमत विभेद की नीति अपना सकती हैं। इस बाजार में माँग वक्र कम लोचदार होती है। जैसे भारतीय रेलवे, हरियाणा तथा अन्य राज्यों के बिजली बोर्ड, एकाधिकारी के उदाहरण हैं।

मुख्य विशेषताएँ

(1) अकेला विक्रेता या उत्पादक : एकाधिकारी में वस्तु का विक्रेता या उत्पादक एक ही होता है और बाजार में उसका कोई प्रतियोगी नहीं होता है। एकाधिकारी अकेला उद्यमी या एक फर्म या संयुक्त पूंजी कम्पनी भी हो सकती है।

(2) निकटतम स्थानापन्न नहीं : एकाधिकारी जिस वस्तु का उत्पादन या विक्रय करता है। उस वस्तु का कोई निकटतम स्थानापन्न उपलब्ध नहीं होता है। अर्थात एकाधिकार में माँग की तिरछी लोच होती है।

(3) फर्म तथा उद्योग में अन्तर नहीं : एकाधिकार में क्योंकि एक फर्म होती हैं। इसलिये फर्म तथा उद्योग का अन्तर समाप्त हो जाता है।

(4) एकाधिकारी फर्म कीमत निर्धारक होती हैं ना कि कीमत स्वीकारक : एकाधिकारी स्वतन्त्र कीमत नीति अपना सकता है। अर्थात वह अपनी इच्छानुसार कीमत में कमी या वृद्धि कर सकता है।

(5) फर्म के बाजार में प्रवेश पर कठोर प्रतिबन्ध : एकाधिकार में बाजार में फर्मों के प्रवेश पर कई कठोर प्रतिबन्ध होते हैं। इसलिये एकाधिकारी का कोई प्रतियोगी नहीं होता है।

(6) कीमत विभेद की नीति– कई बार एकाधिकारी अधिकतम लाभ कमाने के लिये अपनी वस्तु की विभिन्न बाजारों में विभिन्न कीमतें ले सकता है। जिस बाजार में माँग वक्र कम लोचदार होती है। एकाधिकारी अधिक कीमत ले सकता है। इसके विपरीत जिस बाजार में माँग अधिक लोचदार होती है। एकाधिकारी कम कीमत ले सकता है।

(7) पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण : एकाधिकारी फर्म का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है।

(8) कमलोचदार माँग : एकाधिकार में माँग वक्र कम लोचदार होती है। अर्थात AR और MR वक्र ऊपर से नीचे की ओर आते हैं।

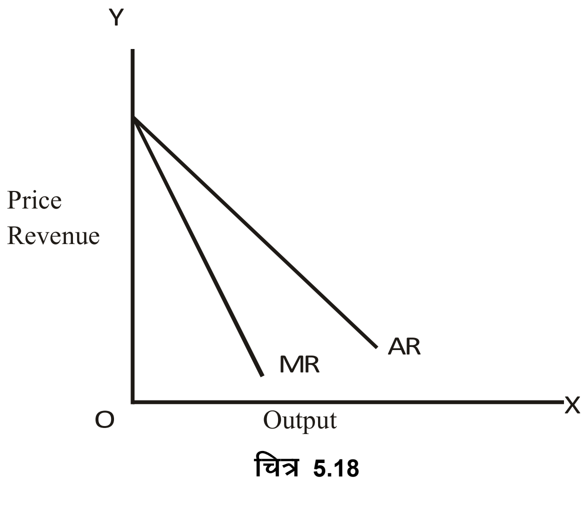

चित्र 5.18

एकाधिकार बाजार में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण

एकाधिकारी फर्म सन्तुलित कीमत तथा सन्तुलित उत्पादन का निर्धारण उस अवस्था में करती है। जब निम्न दो शर्ते पूरी होती हैं–

(1) MC = MR
(2) MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटती हैं।

अल्पकाल में कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण

अल्पकाल समय की वह अवधि हैं। जिसमें एकाधिकारी फर्म केवल घटते–बढ़ते उत्पादन के साधनों में परिवर्तन करके ही उत्पादन को बदल सकती हैं। परन्तु बँधे साधन जैसे, मशीनरी, प्लॉट, इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

सन्तुलन की अवस्था में अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म को उत्पादन करने में असामान्य लाभ, सामान्य लाभ या न्यूनतम हानियाँ भी हो सकती हैं।

असामान्य लाभ

एकाधिकारी को सन्तुलन की अवस्था में उस समय असामान्य लाभ प्राप्त होते हैं जब

AR>AC

जहाँ

SMS= Short-run marginal Cost
SAC = Short-run Average Cost
MR = Marginal Revenue
AR = Average Revenue

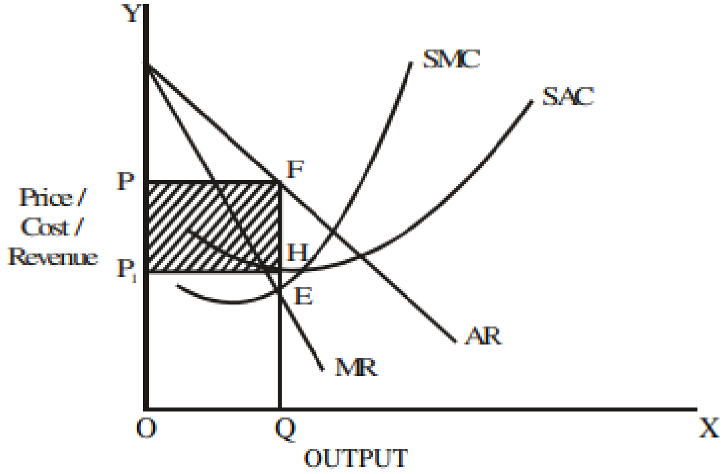

चित्र 5.19

रेखाचित्र में

AR = FQ
AC = HQ
AR>AC

एकाधिकारी फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

लाभ प्रति इकाई = AR–AC
= FQ–HQ
= FH

कुल लाभ = लाभ प्रति ईकाई x कुल उत्पादन
= FH x OQ
= FH x P_1H
= PP_1 HF

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि एकाधिकारी बिन्दू पर सन्तुलन में हैं क्योंकि इस बिन्दू पर MC=MR और MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रही है। सन्तुलित कीमत OP निर्धारित होगी और सन्तुलित उत्पादन OQ किया जायेगा। इस अवस्था में फर्म को PP_1HF के समान असामान्य लाभ होंगे।

सामान्य लाभ

एकाधिकारी फर्म को सन्तुलन की अवस्था में इस समय सामान्य लाभ प्राप्त होंगे। जब AR=AC

रेखाचित्र में AR=FQ

AC= FQ

$\therefore$ AR = AC

$\therefore$ फार्म को सामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

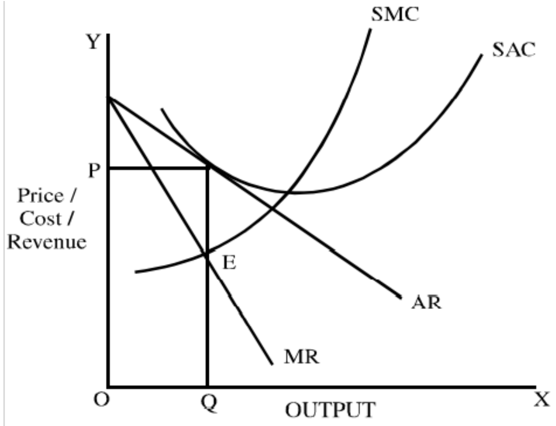

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि एकाधिकारी फर्म E बिन्दू पर सन्तुलन में होगी क्योंकि इस बिन्दू पर MC=MR हैं MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटती है। सन्तुलित कीमत OP निर्धारित होगी और सन्तुलित उत्पादन OQ किया जायेगा। इस अवस्था एकाधिकारी को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

क्योंकि AC=AR हैं।

न्यूनतम हानि

अल्पकाल में एकाधिकारी को कई बार मन्दी आदि की अवस्था में हानि भी उठानी पड़ सकती हैं। यह स्थिती उस समय उत्पन्न होती है। जब वस्तु की कीमत कम होने के कारण

AR<AC

रेखाचित्र में

AR = HQ

AC= FQ

AR<AC

फर्म को हानि होगी।

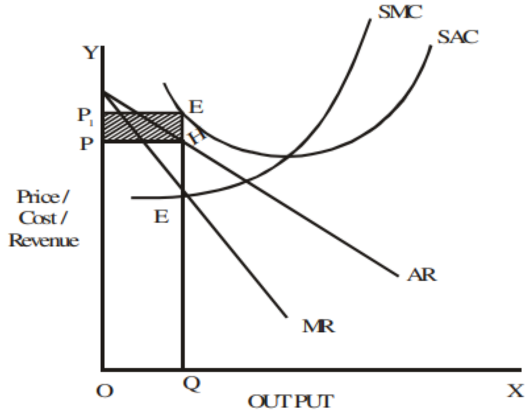

चित्र 5.21

हानि प्रति इकाई = AC–AR

=FQ–HQ=FH

कुल हानि = हानि प्रति इकाई x कुल उत्पादन

= FH x OQ

= FH x PH

= PP_1FH

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि एकाधिकारी फर्म E बिन्दु पर सन्तुलन में होगी। क्योंकि MC=MR हैं तथा MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रही हैं। इस अवस्था में सन्तुलीत कीमत OP निर्धारित होगी तथा सन्तुलीत उत्पादन OQ किया जायेगा। एकाधिकारी फर्म को इस अवस्था में PP_1FH के समान हानि सहन करनी पड़ेगी।

दीर्घकाल में कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण

दीर्घकाल समय की वह अवधि होती है। जिसमें उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं और एकाधिकारी वस्तु की पूर्ति में माँग के अनुसार परिवर्तन कर सकता है। दीर्घकाल में भी सामान्यत एकाधिकारी फर्म

की औसत आय फर्म की औसत लागत से अधिक होती है और नई फर्मों के प्रवेश पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध होते हैं। प्रतिबन्ध होने के कारण एकाधिकारी फर्म को दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ प्राप्त होते हैं।

जहाँ

LMC = Long-run marginal cost

LAC = Long-run average cost

रेखाचित्र में

AR= FQ
AC=AQ
AR>AC

∴ फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त होंगे

लाभ प्रति इकाई = AR–AC
= FQ–HQ

कुल लाभ = लाभ प्रति इकाई x कुल उत्पादन

= FH x OQ
= FH x P_1H
= PP_1HF

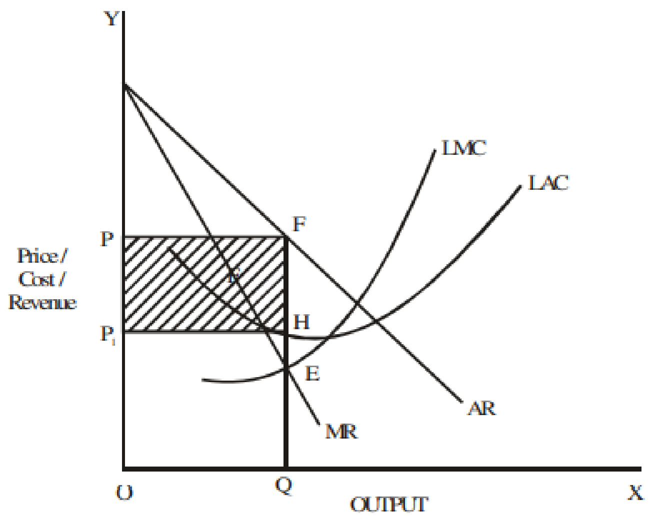

चित्र 5.22

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में E बिन्दू पर सन्तुलन में होंगी। ताकि इस बिन्दू पर LMC=MR है तथा LMC, MR बक्र को नीचे से काट रही हैं। सन्तुलीत कीमत OP तथा सन्तुलीत उत्पादन Og निर्धारित होते हैं। दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म को PP_1HF के समान असामान्य लाभ प्राप्त होगे।

कीमत विभेदीकरण

(Price Discrimination)

कीमत विभेद का अर्थ– जब एकाधिकारी अपनी वस्तु के लिये भिन्न–भिन्न क्रेताओं से भिन्न–भिन्न कीमतें लेता है। तो उसे कीमत विभेद या विभेदात्मक एकाधिकार कहते हैं जैसे हरियाणा बिजली बोर्ड, घरेलू उपयोग के लिए बिजली की दर अधिक वसूल करता है तथा उद्योगों के लिए बिजली की प्रति ईकाई कम दर पर वसूल करता है। अर्थात कीमत विभेद वह स्थिती होती है जिसमें एक वस्तु विभिन्न खरीददारों को विभिन्न कीमतों पर बेची जाती हैं।

प्रो० स्टिगलर के अनुसार ''कीमत विभेदीकरण का अर्थ हैं कि तकनीकी दृष्टि से समरूप पदार्थो को इतनी भिन्न–भिन्न कीमतों पर बेचना जो उनकी सीमान्त लागतों के अनुपात से कही अधिक हैं''

कीमत विभेद के प्रकार

(a) व्यक्तिगत कीमत विभेद : जब एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की विभिन्न व्यक्तियों से विभिन्न कीमतें लेता है। उसे व्यक्तिगत कीमत विभेद कहते हैं। जैसे वकील द्वारा अमीर व्यक्तियों से अधिक फीस तथा गरीब व्यक्तियों से कम फीस लेना व्यक्तिगत कीमत विभेद का उदाहरण हैं।

(b) भौगोलिक कीमत विभेद : जब एकाधिकारी फर्म घरेलू बाजार में वस्तु की ऊची कीमत और विदेशी बाजार में कम कीमत लेती हैं तो यह भौगोलिक कीमत लेती हैं तो यह भौगोलिक कीमत विभेद का उदाहरण हैं।

(c) उपयोग कीमत विभेद : जब एकाधिकारी फर्म एक वस्तु के विभिन्न उपयोगों के लिये विभिन्न कीमतें लेती हैं। जैसे योग के लिए बिजली की प्रति इकाई कीमत तथा क षि व उद्योगों में उपयोग के लिये बिजली की प्रति इकाई कम कीमत ली जाती है। यह उपयोग कीमत विभेद है।

(d) समयानुसार कीमत विभेद : जब एकाधिकारी फर्म एक जैसी सेवा के लिये अलग–अलग समय पर अलग–अलग कीमत लेती है। जैसे ट्रनकॉल के रेट (कीमत) दिन में ऊँचे तथा शत में नीचे होते हैं।

कीमत विभेद की शर्ते या कीमत विभेद कब सम्भव होता है

(1) लोचशीलता में अन्तर : कीमत विभेद तभी सम्भव हैं। जब एकाधिकारी के लिये भिन्न–भिन्न बाजारों में माँग की लोच भिन्न–भिन्न होती है। प्रायः जिस बाजार में माँग कम लोचदार होती है। वहाँ एकाधिकारी अधिक कीमत तथा जिस बाजार में माँग की लोच अधिक होती हैं। वहाँ एकाधिकारी कम कीमतें लेता हैं।

(2) वस्तु की एक बाजार से दूसरे बाजार में बिक्री का न होना– कीमत विभेद के लिये एक अनिवार्य शर्त यह भी है कि सस्ते बाजार के ग्राहक उस बाजार से वस्तु खरीदकर महँगे बाजार में न बेच सके। यदि वस्तु का एक बाजार से दूसरे बाजार में हस्तांतरण होता है तो कीमत विभेद सम्भव नही होगा।

(3) सरकारी स्वीकृति : कई बार एकाधिकारी सरकार की तरफ से एक वस्तु के लिये विभिन्न कीमत वसूल करने की स्वीक ति ले लेता है। जैसे भारतीय रेलवे या हरियाणा बिजली बोर्ड में कीमत विभेद के लिये सरकारी स्वीकृति प्राप्त है।

(4) वस्तु विभेद : एकाधिकारी वस्तु की विभिन्न पैंकिंग, लेबल, नाम आदि बदल कर कीमत विभेद करता है। वह क्रेताओं को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करता है कि वस्तु की एक किस्म से दूसरी किस्म में अच्छी Quality है।

कीमत विभेद की श्रेणी

प्रो० पीगू ने कीमत विभेद की तीन श्रेणीयाँ बताई हैं

(1) प्रथम श्रेणी कीमत विभेद : इसमे एकाधिकारी विभिन्न क्रेताओं की कीमत वसूल करता है और इस प्रकार एकाधिकारी प्रत्येक उपभोक्ता से सम्पूर्ण बचत खींच लेता हैं।

(2) द्वितीय श्रेणी कीमत विभेद : इसमें एकाधिकारी इस प्रकार से विभिन्न क्रेताओं से कीमत वसूल करता है कि वह उनकी सम्पूर्ण उपभोक्ता की बचत तो नहीं किन्तु उसका एक हिस्सा प्राप्त कर लेता है। भारतीय रेलवे इसी सिद्धांत पर विभिन्न श्रेणीयों के यात्रियो से विभिन्न किराया वसूल करता है।

(3) तृतीय श्रेणी कीमत विभेद : इसके एकाधिकारी माँग की लोच के आधार पर अपने क्रेताओं को दो या दो से अधिक समूहों में बाँट देता है। जिस बाजार में माँग कम लोचदार होती है। वहाँ अधिक कीमत तथा जिस बाजार में मांग अधिक लोचदार होती है। वहाँ कम कीमत वसूल की जाती है।

विभेदात्मक एकाधिकार से कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण

विभेदात्मक एकाधिकार से कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है। कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण करते समय एक एकाधिकारी को दो निर्णय लेने पड़ते हैं

(1) वस्तु का कुल उत्पादन कितना किया जाये।

(2) कुल उत्पादन का कितना–कितना भाग विभिन्न बाजारों में कितनी–कितनी किमतों पर बेचा जाये।

सबसे पहले एकाधिकारी समस्त बाजार को लोचशीलता के आधार पर अलग–अलग भागों में बाटता है। एकाधिकारी वस्तु का उत्पादन निर्धारण वहाँ करेगा जिस बिन्दू पर दोनों बाजारों की कुल सीमान्त आय, सीमान्त लागत के बराबर हो जाये। अर्थात

$$EMR = MC$$

$$MR_A + MR_B = MC$$

विभिन्न बाजारों में वस्तु की कीमत का निर्धारण माँग की लोच के आधार पर किया जाता है। अधिक लोचदार माँग वाले बाजार में वस्तु की कम कीमत और कम लोचदार माँग वाले बाजार में वस्तु की अधिक कीमत निर्धारित की जाती है। इसे निम्न रेखाचित्र की सहायता से दिखाया जा सकता है।

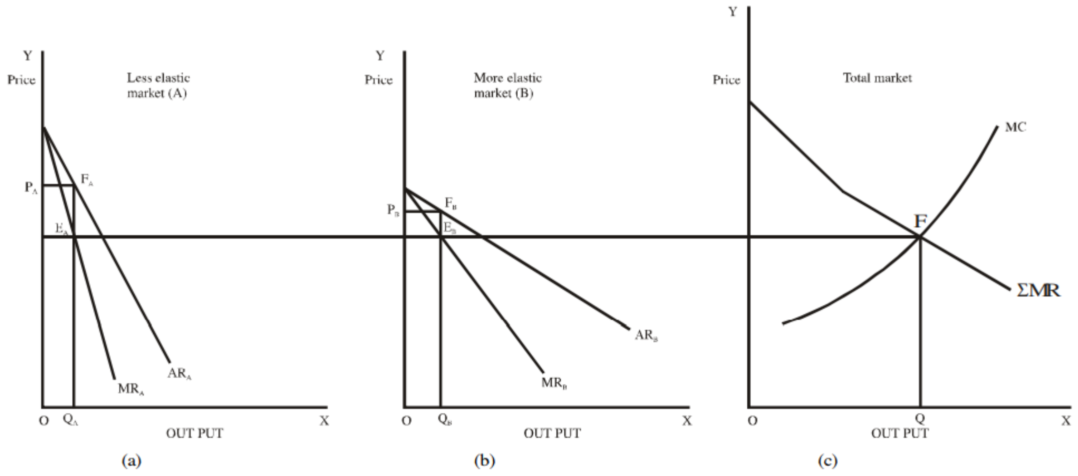

चित्र 5.23

रेखाचित्र में OP_A (कम लोचदार बाजार में किमत) $> OP_B$ (अधिक लोचदार बाजार में कीमत) OQ_A (कम लोचदार बाजार में उत्पादन) $< OP_B$ (अधिक लोचदार बाजार में उत्पादन)

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि बाजार । कम लोचदार तथा बाजार B अधिक लोचदार बाजार है। एकाधिकारी कुल उत्पादन OQ के समान करता है। और वह इनमें से कम लोचदार बाजार में कम उत्पादन और अधिक लोचदार बाजार में अधिक उत्पादन का विक्रय करता है। परन्तु एकाधिकारी कम लोचदार बाजार में ऊची कीमत OP_A तथा अधिक लोचदार बाजार में अधिक किमत OP_B लेता है।

क्या कीमत विभेद समाज के लिये हानिकारक होता है या लाभदायक

कुछ अवस्थाओं में कीमत विभेद समाज के लिये लाभदायक और कुछ अवस्थाओं में कीमत विभेद समाज के लिये हानिकारक हैं।

कीमत विभेद समाज के लिये लाभदायक

इसके लिये निम्न अवस्थाएँ हैं

(1) यदि कीमत विभेद के कारण किसी वस्तु की कीमत निर्धन वर्ग के लिये नीची रखी जाये और अमीर वर्ग के लिये ऊँची कीमत रखी जाये तो ऐसी अवस्था में कीमत विभेद समाज के लिये लाभदायक होता है।

(2) बहुत–सी जनसाधारण सेवायें ऐसी होती हैं। जो कीमत विभेद की नीति के बिना साधारण लोगों को प्राप्त नहीं होती हैं। जैसे रेलवे सेवा, डॉक्टर की सेवायें आदि।

(3) यदि कीमत विभेद के अर्न्तगत एकाधिकारी अपनी उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करके उत्पादन में वृद्धि करता हैं। तो रोजगार में वृद्धि होगी। जिससे कीमत विभेद समाज के लिये लाभदायक होगा।

कीमत विभेद समाज के लिये हानिकारक

निम्न परिस्थितीयों में कीमत विभेद समाज के लिये हानिकारक होता है।

(1) यदि कीमत विभेद के कारण गरीबों को ऊँची किमतें देनी पड़ती है। तो कीमत विभेद समाज के लिये हानिकारक हैं।

(2) यदि राशिपातन की नीति के कारण एकाधिकारी घरेलू बाजार में ऊंची कीमत लेता है और विदेशी बाजार में कम कीमत लेता है तो कीमत विभेद समाज के लिये हानिकारक होगा।

(3) जब एकाधिकारी जान बुझकर (सोच–समझकर) अपने लाभ अधिकतम करने के लिये वस्तु का उत्पादन कम करता है और कीमत बहुत ऊँची वसूल करता है तो कीमत विभेद हानिकारक होता है।

एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता में तुलना

(Comparison between Monopoly and Perfect Competition)

एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता बाजारों की तुलना निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर की जा सकती हैं

(1) उत्पादन सम्बन्धी तुलना : दीर्घकालीन संतुलन की दशा में पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में एकाधिकार की तुलना में उत्पादन अधिक होता है। पूर्ण प्रतियोगीता की दशा में दीर्घकालीन संतुलन की स्थिती में दीर्घकालीन सीमान्त लागत, सीमान्त आय, दीर्घकाल की औसत लागत, औसत आय एक दूसरे के बराबर होते हैं।

$$MC=MR=AR=AC$$

अतएव एकाधिकारी की स्थिती में पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में कीमत अधिक होती है परन्तु उत्पादन कम होता है।

(2) कीमत सम्बन्धी तुलना : दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकार की स्थिति में कीमत अधिक होती है। इसका कारण यह है कि दीर्घकालीन संतुलन की स्थिती में पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में कीमत न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर होती है। इसे निम्न रेखाचित्र से दिखाया जा सकता है।

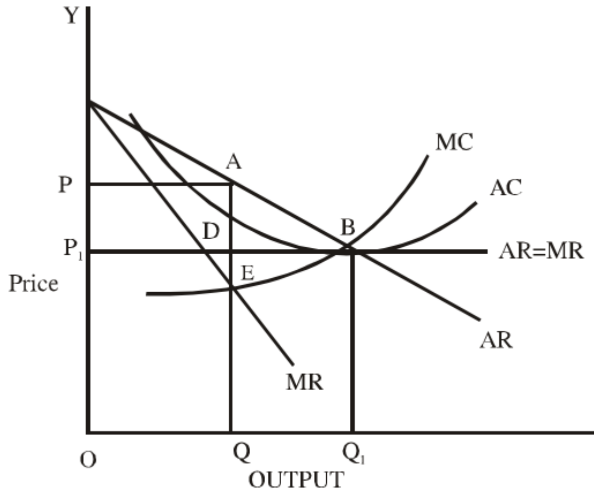

चित्र 5.24

रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि पूर्व प्रतियोगिता की स्थिति में सन्तुलन B बिन्दू पर निर्धारित होगा। फर्म OQ_1 वस्तु का उत्पादन करेगी तथा OP_1 कीमत पर बचेगी। इसके विपरीत एकाधिकार की दिशा में

कीमत न्यूनतम औसत लागत से पहले सन्तुलन की स्थिती में पहुंचने का प्रयत्न करता है। एकाधिकारी। बिन्दू पर संतुलन में हैं वह क्क मात्रा का उत्पादन कर रहा है। वस्तु की कीमत OP निर्धारित होती है अतः संतुलन उत्पादन पर दीर्घकालीन औसत लागत AQ होगी जो न्यूनतम औसत लागत BQ_1 से अधिक है।

(3) **फर्मों का उद्देश्य** : इन दोनों बाजारों में फर्म का उद्येश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है।

(4) **क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या सम्बन्धी मान्यता** : एकाधिकार में केवल एक ही विक्रेता तथा बहुत सारे क्रेता होते हैं। इस बाजार में फर्म तथा उद्योग में कोई अन्तर नहीं होता। एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता हैं। जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में एक समरूप वस्तु के बहुत सारे विक्रेता तथा क्रेता होते हैं। अतः कोई एक विक्रेता अपनी पूर्ति में तथा क्रेता अपनी माँग परिवर्तन करके बाजार कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता।

(5) **उत्पादन सम्बन्धी मान्तया** : पूर्ण प्रतियोगिता की यह मान्यता है कि सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएं समरूप होती है। उनमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं पाया जाता। एकाधिकार स्थिती में एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु समरूप भी हो सकती है और नहीं भी हो सकती।

(6) **लाभ सम्बन्धी तुलना** : अल्पकाल में इन दोनों की अवस्थाओं में उत्पादक असामान्य लाभ, सामान्य लाभ या न्यूनतम हानि उठा सकता है। परन्तु दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिती में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होते है।

(7) **प्रवेश सम्बन्धी दोनों बाजारों की मान्यता** : पूर्ण प्रतियोगिता में नई फर्मो के प्रवेश तथा पूरानी फर्मों के उद्योग से बाहर जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। इसके विपरीत एकाधिकारी की स्थिति में फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध होता हैं।

(8) **फर्मों के निर्णय संबंधी निष्कर्ष** : पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म केवल उत्पादन की मात्रा के सम्बन्ध में निर्णय ले सकती है। वह केवल यही निर्धारित कर सकती है कि उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत पर उसे कितना उत्पादन करता है जिससे वह संतुलन की अवस्था में रह सके। इसके विपरीत एकाधिकारी उत्पादन की मात्रा अथवा कीमत दोनों में से किसी एक निर्धारित कर सकता है। परन्तु दोनों को वह निर्धारित नहीं कर सकता। क्योंकि दोनों में एक तत्व का निर्धारण किया जाता है तो दूसरा भी उसके साथ निर्धारित हो जाता है।

(a) **माँग वक्र के आकार सम्बन्धी निष्कर्ष** : एकाधिकार में औसत आप वक्र का दवाब ऊपर से नीचे की ओर होता है। इसे रेखाचित्र में दिखाया जा सकता है।

रेखाचित्र में औसत आप वक्र (AR) तथा सीमान्त आप वक्र (MR) अलग–अलग है MR, AR से नीचे होता है।

इसके विपरीत पूर्ण प्रतियोगीता में फर्मों की अधिक संख्या तथा समरूप वस्तु की मान्यता के कारण मांग वक्र पूर्णतः लोचदार होती है। इसे रेखाचित्र से दिखाया जा सकता है।

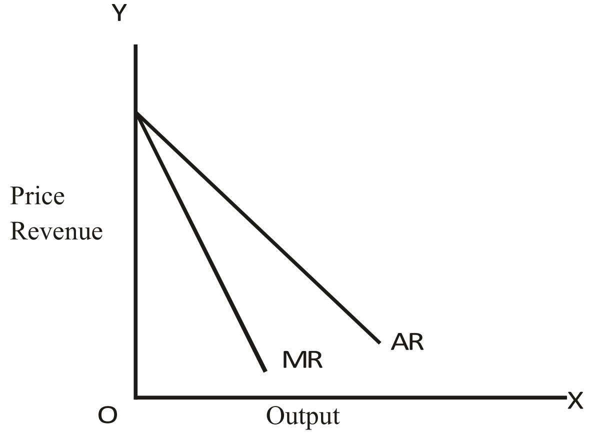

चित्र 5.25

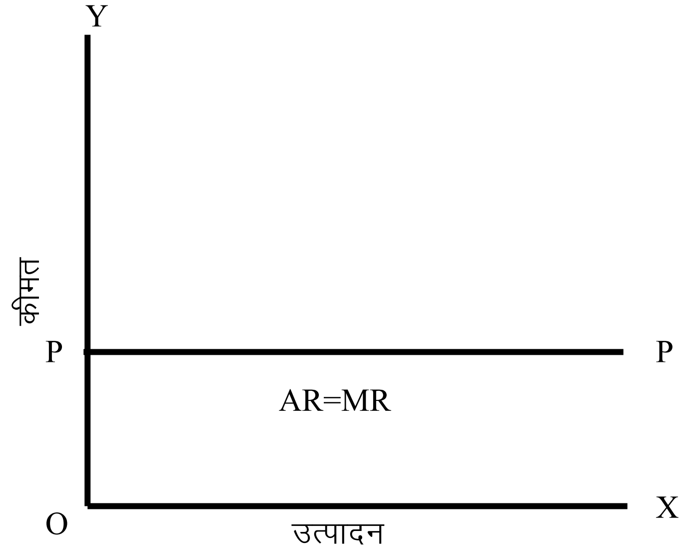

माँग पूर्णतः लोचदार होने का अर्थ है पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आप वक्र (AR) OX अक्ष के समानान्तर होती है। इस स्थिती में औसत आप सीमान्त आप के बराबर होती है। रेखाचित्र में AR, MR एक ही वक्र PP द्वारा दिखाये गये हैं। इस स्थिती में वस्तु की कीमत उद्योग द्वारा निर्धारित की जाती है तथा फर्म उसी कीमत को स्वीकार करने वाली होती हैं।

Bilateral Monopoly

द्विपक्षीय एकाधिकार बाजार की वह अवस्था हैं जिसमे किसी वस्तु का अकेला ही विक्रेता और अकेला ही क्रेता होता है। मानो यदि एक देश में सारा ताँबा एक ही फर्म द्वारा उत्पादित किया जाता है और एक ही फर्म इस सारे ताँबे का प्रयोग करती है तो वह द्विपक्षीय एकाधिकार कहलायेगा। इस बाजार में माँग और पूर्ति द्वारा सन्तुलन स्थापित नहीं किया जा सकता। बल्कि इस बाजार में एक ऐसे रेंज (Ronge) को परिभाषित किया जा सकता है। जिसके अर्न्तगत किमत का क्रेता और विक्रेता में निर्धारण हो सकता है। परन्तु कीमत या उत्पादन का एक निचित् स्तर अनार्थिक तत्वों पर निर्भर करता है। जैसे सौदा करने की शक्ति या विभिन्न फर्मों की योग्यता और नीतियाँ। द्विपक्षीय एकाधिकार में आर्थिक अनिश्चितता बनी रहती है। जो अन्य में बाहरी तत्वों द्वारा निर्धारित होती हैं। कीमत कुछ सीमाओं के बीच अनिश्चीत् होती है। मानो रेलवे के सभी यन्त्र एक ही फर्म द्वारा उत्पादित किये जाते हैं और ये सभी यन्त्र केवल एक क्रेता अर्थात ब्रिटिश रेलवे द्वारा खरीद लिये जाते हैं। दोनों फर्मों का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। उत्पादक एकाधिकारी का सन्तुलन वहाँ निर्धारित होगा जहाँ MR तथा MC वक्र एक–दूसरे को काटते हैं। इसे रेखाचित्र 5.27 में दर्शाया जा सकता है।

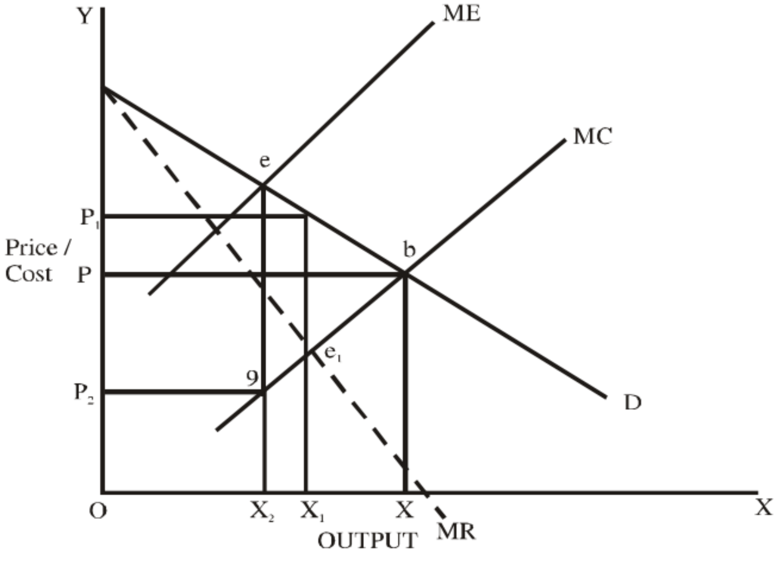

चित्र 5.27

चित्र में स्पष्ट है कि C_1 बिन्दू पर विक्रेता प्रकाधिकारी फर्म का MC=MR हैं। इसलिये हम स्थिती में उसका लाभ अधिकतम

होगा। यदि उत्पादन की X_1 मात्रा उत्पादित की जाती है और उसे P_1 कीमत पर बेचना है। परन्तु उत्पादक अधिकतम लाभ वाली स्थिती को प्राप्त नहीं कर पायेगा। क्योंकि उत्पादक एकाधिकारी ने केवल अकेले ही क्रेता एकाधिकारी को वस्तु बेचती हैं और क्रेता एकाधिकारी क्रय निर्णयों द्वारा बाजार कीमत को प्रभावित कर सकता है। क्रेता भी अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहेगा और वह अपनी शक्ति को जानते हुए उत्पादक अपनी कीमतें थोपने का प्रयास करेगा। उत्पादक का MC क्रेता के लिये पूर्ति वक्र होती है। इस वक्र का ऊपर की ओर बढ़ता हआ ढलान यह दर्शाता हैं कि जैसे–जैसे। एकाधिकारी अधिक से अधिक वस्तु खरीदेगा उसे ऊँची कीमत देनी पड़ेगी। MC वक्र अर्थात पूर्ति वक्र को प्रभावित करने वाली शर्ते क्रेता के नियन्त्रण में नहीं होती है। क्योंकि यह वह मात्रा होती है। जो विक्रेता एकाधिकारी भिन्न–भिन्न कीमतों पर बेचना चाहता है। क्रेता के व्यय में वृद्धि होने पर (जिसे रेखाचित्र में ME द्वारा दिखाया गया है।) यह क्रेता एकाधिकारी के लिये सीमान्त लागत को दर्शाती है। उत्पादक क्रेता के लिये आगत (Input) है। अतः अपने लाभ को अधिकतम करने के लिये क्रेता X वस्तु की अतिरिक्त इकाईयां जब तक खरीदता जायेगा तब तक उसका MC बराबर कीमत नहीं हो सकता है। कीमत इक वक्र द्वारा दिखाई गई है। वक्र एकाधिकारी का सन्तुलन म बिन्दू पर होगा। इस स्थिती में वह X, उत्पादन की मात्रा खरीदना चाहेगा और कीमत P_2 देना चाहेगा। कीमत पूर्ति वक्र के अर्थात MC वक्र के बिन्दू पर निर्धारित होती है। मानो क्रेता P_2 क्रेता को कीमत देना चाहता है। जबकि विक्रेता P_1 कीमत लेना चाहता है। इसलिये बाजार में अनिचित् कीमत बनी रहेगी। दोनों फर्मे देर–सवेर समझौता कर लेगी और कीमत P_1 और P_1 के बीच निर्धारित हो जायेगी। यह दोनों फर्मों की सौदा करने की शक्ति तथा योग्यता पर निर्भर करता है।

व्यवहार में वस्तु बाजार द्विपक्षीय एकाधिकार नहीं पाया जाता है। परन्तु श्रम बाजार में जहाँ श्रमिक एक संगठन के रूप में अपने–आप को सुदृढ़ कर लेते है। जैसे Coal bood तथा उसके काम करने वाला श्रमिक।

यदि वस्तु बाजार द्विपक्षीय एकाधिकार होता है तो MC वक्र या पूर्ति वक्र क्रेता एकाधिकारी के लिये पूर्ति वक्र बन जाती है। इसलिये उसका सन्तुलन वहाँ होगा जहाँ पर नई सीमान्त वक्र या कीमत या माँग वक्र आपस में काटती है। रेखाचित्र में यह स्थिति b बिन्दू पर पाई जाती है। इस अवस्था में सीमान्त लागत P* होगी और उत्पादन का स्तर बढ़कर X* हो जायेगा अर्थात इस स्थिती में विक्रेता एकाधिकारी P से कम कीमत P* लेना चाहेगा। उस स्थिती में क्रेता एकाधिकारी के लिये कीमत कम हो जायेगी और विक्रेता एकाधिकारी उत्पादन अधिक करेगा और दोनों को लाभ होगा।

अतः स्पष्ट है कि द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिती में किमत में कुछ सीमाओं में अनिचितता बनी रहती है।

Multiplant Monopoly

Multi - Firm विभिन्न प्लाटों में एक जैसा उत्पाद का उत्पादन करती है। तथा अलग–अलग प्लांटों में लागत अलग अलग होती है। यहाँ पर यह माना गया है कि फर्म के केवल दो प्लांट है A और B दोनो प्लांटो की लागत वक दी हुई है। जिनको A तथा B रेखाचित में दर्शाया गया है। फर्म के संतुलन के लिए दोनों प्लांटों की MC_1 तथा MC_2 वक्रो का Horizontal Summation किया जाता है। जो कि रेखाचित्र C में दर्शाया (MC) गया है।

फर्म के लिए मांग वक्र दिया गया है। जो रेखाचित्र ब में क्क है। अतः डत वक्र की सहायता से एकाधिकार की कीमत निर्धारण होगा।

संतुलन की शर्त :

(1) MC=MR

(2) MC cuts MR from below

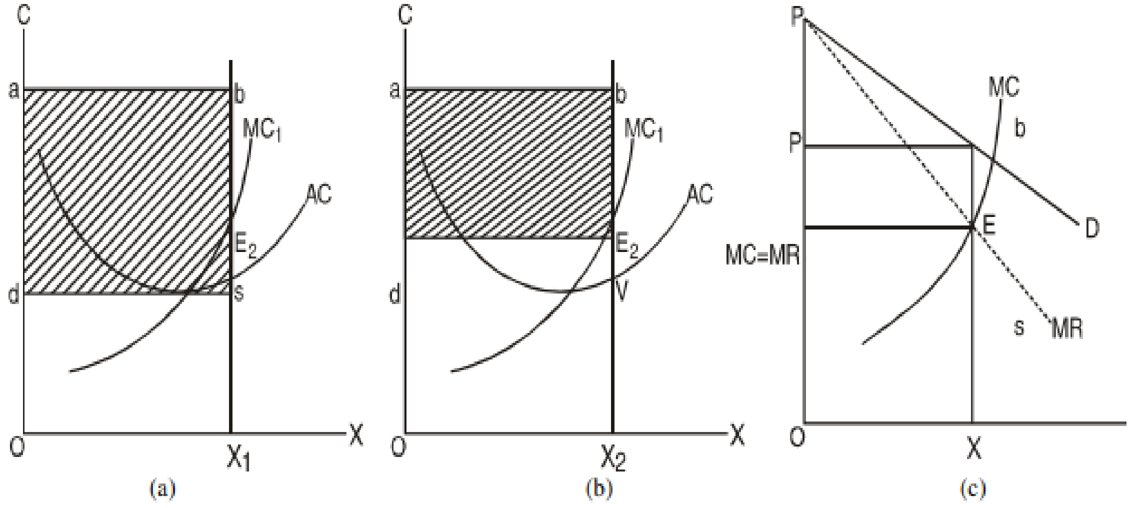

चित्र 5.28

अतः C रेखाचित्र में कीमत निर्धारण E बिन्दु पर होता है जहाँ पर MC=MR है। तथा फर्म P कीमत तथा X उत्पादन करेगी। । तथा B प्लांट में भी संतुलन की शर्त होगी जहाँ पर MC = MR=MC इसके अनुसार संतुलन । प्लांट में E, बिन्दु पर तथा B प्लांटों में एक जैसी और एकाधिकारी कीमत ली जायगी जो OP (रेखाचित्र C में) है। तथा उत्पादन OX होगा जो की X जो की । प्लांट द्वारा कया गया है तथा Y_2 जो प्लांट B द्वारा किया गया है का जोड़ $(X=X_1 +X_2)$ है।

प्लांट A का लाभ ADSB तथा B प्लांट का लाभ GHJT होगा जब प्लांट X_1 तथा X_2 उत्पादन कर रही हैं और एकाधिकारी किमत चार्ज कर रही हैं।

लघु प्रश्नः

1. बाजार को परिभाषित करें।
2. संतुलन से आपका क्या तात्पर्य है?
3. सही प्रतियोगिता क्या है?
4. एकाधिकार को परिभाषित करें।
5. किसी व्यापारिक फर्म के कुछ उद्देश्यों का उल्लेख करें।

लंबे प्रश्नः

1. बाजार से आपका क्या अभिप्राय है? यह भी बताएं कि विभिन्न बाजार संरचनाओं का ज्ञान व्यवसाय निर्णय लेने में कैसे मदद करता है।
2. सही बाजार प्रतिस्पर्धा के तहत फर्म और उद्योग के संतुलन की व्याख्या करें।
3. एकाधिकार बाजार की स्थिति पर एक विस्तृत नोट लिखें।
4. एकाधिकार बाजार की स्थिति से आपका क्या तात्पर्य है और इसके व्यावहारिक अनुप्रयोगों की भी व्याख्या करें।